श्रीमद्देवीभागवतामृतम्

पूज्यपाद अनन्तश्रीविभूषित उत्तराम्नाय ज्योतिष्पीठाधीश्वर एवं पश्चिमाम्नाय द्वारका शारदापीठाधीश्वर जगद्गुरु शङ्कराचार्य स्वामी स्वरूपानन्द सरस्वती जी महाराज द्वारा श्रीमद्देवीभागवत महापुराण पर दिए गए नौ प्रवचनों का संग्रह

संकलक व सम्पादक

साध्वी पूर्णाम्बा

श्रीमद्देवीभागवतामृतम्

पूज्यपाद अनन्तश्रीविभूषित उत्तराम्नाय ज्योतिष्पीठाधीश्वर एवं पश्चिमाम्नाय द्वारका शारदापीठाधीश्वर
जगद्गुरु शङ्कराचार्य स्वामी स्वरूपानन्द सरस्वती जी महाराज
द्वारा श्रीमद्देवीभागवत महापुराण पर दिए गए नौ प्रवचनों का संग्रह

संकलक / सम्पादक
साध्वी पूर्णाम्बा

प्रकाशक
ज्योतिर्मठ-बदरिकाश्रम-हिमालय
के लिए स्वामिश्रीः न्यासः, काशी द्वारा प्रकाशित

श्रीमद्देवीभागवतामृतम्

पूज्यपाद अनन्तश्रीविभूषित उत्तराम्नाय ज्योतिष्पीठाधीश्वर एवं पश्चिमाम्नाय द्वारका शारदापीठाधीश्वर
जगद्गुरु शङ्कराचार्य स्वामी स्वरूपानन्द सरस्वती जी महाराज
द्वारा श्रीमद्देवीभागवत महापुराण पर दिए गए नौ प्रवचनों का संग्रह

संकलक / सम्पादक
साध्वी पूर्णाम्बा

प्रकाशक
ज्योतिर्मठ-बदरिकाश्रम-हिमालय
(के लिए स्वामिश्रीः न्यासः, काशी द्वारा प्रकाशित)

विमोचन तिथि प्लवङ्ग 2071 गुरुपूर्णिमा
प्रथम संस्करण 1000 प्रतियाँ

मूल्य : प्रकाशनालय हेतु सहयोगराशि यथाशक्ति *
मुद्रक : श्रीजी प्रिण्टर्स, नाटी इमली, वाराणसी-1 (उत्तर प्रदेश)

---

* नोट — ज्योतिर्मठ-बदरिकाश्रम-हिमालय एवं उसकी सेवा में रत 'स्वामिश्रीः न्यासः' कोई व्यापारिक संस्था नहीं है अतः हम पुस्तक बेचते नहीं, पर लोगों तक पहुँचाने की सदिच्छा रखते हैं । अतः प्रकाशन के लिए पाठकों द्वारा स्वेच्छा से प्रदत्त राशि को प्रकाशन के मद में ही सुरक्षित रखते और उससे ही प्रकाशन कार्य करते हैं ।

समर्पण

गुरुर्ब्रह्मा गुरुर्विष्णुः गुरुर्देवो महेश्वरः ।
गुरुः साक्षात् परब्रह्म तस्मै श्रीगुरवे नमः ॥

पूज्यपाद अनन्तश्रीविभूषित ज्योतिष्पीठाधीश्वर एवं द्वारका शारदापीठाधीश्वर जगद्गुरु शङ्कराचार्य

स्वामी स्वरूपानन्द सरस्वती जी महाराज

के पावन श्रीचरणों में
जिन्होंने कृपा कर मुझ अकिञ्चन को
निवृत्ति मार्ग में अग्रसर किया
और अविरल गंगा तपस्या के समय जा रहे
प्राणों को मन्त्रशक्ति से न्यस्त कर बचाया ।

आषाढ़ शुक्ल प्रतिपदा संवत् 2071
28 जून 2014 ई.

क्रमांक................... सञ्चारयात्रास्थल हरिद्वार (उत्तराखण्ड)................... दिनाङ्क :...................

शुभाशंसा

संसार के सभी प्राणी अपनी माता से सर्वाधिक प्रेम करते हैं । हमारे शास्त्रों में वर्णित **'मातृदेवो भव, पितृदेवो भव, आचार्यदेवो भव'** आदि वाक्यों में भी प्रथम स्थान माता को ही दिया गया है । भगवान् आदि शङ्कराचार्य जी ने भी कहा है — **कुपुत्रो जायेत क्वचिदपि कुमाता न भवति** अर्थात् पुत्र भले ही कुपुत्र हो जाए पर माता कभी कुमाता नहीं हो सकती । इस सृष्टि का आधार भी वह मातृशक्ति ही है जो भक्तों के कल्याणार्थ आकार धारण कर भगवती त्रिपुरा के रूप में प्रकट होती हैं ।

साधकों के सामने कृपाभाव से प्रत्यक्ष होकर यही शक्ति अपने दोनों चरणों से उनके लिए अमृत-धारा-प्रस्रवण करती है और इस अमृतरूप-धारा से समस्त नाड़ी-चक्र को आप्लावित करती है। शक्ति जब आकार धारण करती है तब शिव और शक्ति का रसात्मक यन्त्र बनता है, जिसे श्रीयन्त्र कहते हैं । यह शिव और शक्ति का शरीर है । इसमें अनेक त्रिकोणों से घिरा बिन्दु इसका मूल स्थान है, जो प्रपन्न भक्तों का शरण-स्थान है, जिसमें नव-आवरण - बिन्दु, त्रिकोण, अष्टकोण, अन्तर्दशार, बहिर्दशार, चतुर्दश त्रिकोण, अष्टदल, षोडशदल एवं त्रिवृत्तसहित तीन भूपुर रेखाएँ चार द्वारों सहित विद्यमान हैं ।

भगवती के पञ्चदशी महामन्त्र का वर्णन वेदों में किया गया है । त्रिपुरोपनिषद् में इसका रोचक वर्णन **'कामो योनिः कमला वज्रपाणिः'** इत्यादि रूप में किया गया है । मूर्धाभिषिक्त साधकगण इसका अनुष्ठान करते हैं । इस महामन्त्र का आश्रय लेने वाले दोनों लोकों में आप्तकाम-पूर्णकाम हो जाते हैं । इस मन्त्र का श्रीगुरु द्वारा उपदेश प्राप्त होना भी अत्यन्त सौभाग्य का विषय है। ये साक्षात् परदेवता भावनागम्या हैं तो बहिर्मुखों के लिए सुदुर्लभा भी हैं ।

इसी शक्ति की महिमा का वर्णन श्रीमद्देवीभागवत में किया गया है । अनेक कथाओं के माध्यम से भक्तों को तत्त्वज्ञान का उपदेश कराया गया है । वस्तुतः ज्ञान से ही मुक्ति सम्भव है — **ऋते ज्ञानान्न मुक्तिः** । अतः सभी प्राणियों को ज्ञान प्राप्त करने का प्रयास करना चाहिए।

हमारे देवीभागवत प्रवचनों को इस रूप में सामने लाने वाली शिष्या पूर्णाम्बा सहित सभी को हृदय से आशीर्वाद है । इसी प्रकार सत्कार्यों में अपना जीवन व्यतीत कर भगवती की कृपा प्राप्त करें । ग्रन्थ का लाभ सभी भक्तों को मिले और भगवती के श्रीचरणों में अनुराग बढ़े, यही मङ्गलकामना है ।

(स्वामी स्वरूपानन्द सरस्वती)

सम्पादकीय

लोक में सर्वत्र शक्तिमान् की ही प्रधानता देखी जाती है । शक्तिहीन व्यक्ति समाज में कहीं भी आदर नहीं पाता । शिवावतार भगवत्पाद आदि शङ्कराचार्य जी की ज्ञानशक्ति, मीरा, ध्रुव एवं प्रह्लाद जी की भक्तिशक्ति, अर्जुन एवं भीम की पराक्रमशक्ति, आदि कवि वाल्मीकि एवं व्यास जी की कवित्त्वशक्ति, राजा हरिश्चन्द्र एवं युधिष्ठिर की सत्यशक्ति, श्रीहनुमान जी एवं भीष्म की ब्रह्मचर्यशक्ति, शिवाजी एवं महाराणा प्रताप की वीरशक्ति ही समाज को इन सबके प्रति श्रद्धा का भाव अर्पित करने के लिए प्रेरित करती है ।

इस प्रकार हम कह सकते हैं कि सर्वत्र शक्ति की ही प्रधानता है । सम्पूर्ण जगत् उसी शक्ति का ही विलास है । श्रीमद्देवीभागवत में स्वयं भगवती ने कहा है कि **सर्वं खल्विदमेवाहं नान्यदस्ति सनातनम्** अर्थात् समस्त जगत् मैं ही हूँ और मेरे अतिरिक्त अन्य कुछ भी सनातन तत्त्व नहीं है । श्रीमद्देवीभागवत में उसी चैतन्य शक्ति का वर्णन है जिसका अनुभव प्रत्येक प्राणी निरन्तर करता रहता है ।

आषाढ़ की गुप्त नवरात्रि आई तो मन में ऐसी इच्छा उत्पन्न हुई कि भगवती की पूजा-उपासना की जाए । परमपूज्य गुरुजी द्वारा विगत वर्ष परमहंसी गंगा आश्रम में श्रीमद्देवीभागवत महापुराण पर दिए गए प्रवचनों को ही क्रम से प्रतिदिन सुनने का निश्चय किया । एक बार सुनने पर इसे बार-बार सुनने का मन होता था । फिर यह लगा कि इसे लिख लेना चाहिए जिससे अन्य भक्तों को भी इसका लाभ मिल सके। इस प्रकार यह ग्रन्थ तैयार हो गया ।

सच ही कहा गया है कि पुस्तक से सीधे पढ़कर समझना कठिन होता है परन्तु जब वही बात श्रीगुरु के मुख से सुनने का अवसर मिलता है तो हृदयंगम हो जाती है । किसी कवि ने कहा है कि —

वेद उदधि बिन गुरु लखे लागै लोग समान ।
बादल गुरुमुख द्वार है अमृत ते अधिकान ॥

ऊपर उल्लिखित शक्तियों के अतिरिक्त एक अन्य सेवा एवं समर्पण की शक्ति भी है जो पूज्य गुरुजी के प्रिय शिष्य दण्डी स्वामी श्री सदानन्द सरस्वती जी महाराज, दण्डी 'स्वामिश्रीः' अविमुक्तेश्वरानन्दः सरस्वती जी महाराज, ब्रह्मचारी श्री सुबुद्धानन्द जी सहित सभी गुरुभाइयों में देखने को मिलती है ।

पूज्य गुरुजी के प्रिय शिष्य दण्डी 'स्वामिश्रीः' अविमुक्तेश्वरानन्दः सरस्वती जी ने इस ग्रन्थ में जहाँ-जहाँ भी संस्कृत के श्लोक हमें समझ में नहीं आए उनको कृपा कर अपना अमूल्य समय देकर बताया और शुद्ध करवाया ।

इस प्रवचन को उपलब्ध कराने में श्रद्धेया ज्ञाना दीदी जी, मेरी पूर्णाभिषेक दीक्षा सम्पन्न करवाने वाले एवं पूज्य गुरुजी द्वारा निर्मित एवं स्थापित सभी देवालयों के प्रतिष्ठापकाचार्य आचार्य पं. रविशंकर शास्त्री जी एवं धर्मशास्त्रपुराणेतिहासाचार्य आचार्य पं. राजेन्द्र शास्त्री जी का भी पूर्ण सहयोग है । यदि ये प्रवचन प्राप्त न होते तो इस ग्रन्थ का निर्माण ही सम्भव न होता । इस ग्रन्थ का लाभ जिन-जिन भक्तों को मिलेगा उन सबके पुण्य का कुछ अंश निश्चित रूप से इन मान्य महानुभावों को भी प्राप्त होगा ।

श्रीमद्देवीभागवतामृतम् नामक इस ग्रन्थ को प्रकाश में लाने के लिए श्रीज्योतिर्मठ-बदरिकाश्रम-हिमालय के लिए कार्य करने वाले स्वामिश्रीः न्यासः का अत्यन्त आभार जिसके सहयोग से यह ग्रन्थ प्रकाशित हो सका । गुरुबहन साध्वी शारदाम्बा जी का भी पूर्ण सहयोग इस ग्रन्थ के निर्माण में प्राप्त हुआ है । उनके सहयोग के बिना यह ग्रन्थ प्रकाश में आना सम्भव न था । उनका भी हृदय से आभार ।

अन्त में इस शरीर को जन्म देने वाले माता-पिता को भी धन्यवाद देना चाहते हैं जिन्होंने हमें आदि गुरु शङ्कराचार्य जी द्वारा प्रतिष्ठापित चार पीठों में से दो उत्तराम्नाय ज्योतिष्पीठ एवं पश्चिमाम्नाय द्वारका शारदापीठ के पूज्यपाद जगद्गुरु शङ्कराचार्य जी महाराज की शरण में आने का सुअवसर प्रदान किया ।

(साध्वी पूर्णाम्बा)

विषयानुक्रमणिका

प्रथम दिवस

माता कभी कुमाता नहीं होती

समुपस्थित विद्वद्वृन्द ! देवियो ! सज्जनो !

आज एक परम पवित्र श्रीमद्देवीभागवत पुराण ज्ञानयज्ञ का यहाँ प्रारम्भ हो रहा है । वस्तुतः हमलोग यह मानते हैं कि जगदम्बा और भगवान् में कोई भेद नहीं है । शक्ति और शक्तिमान् में कोई भेद नहीं होता है । दोनों एक-दूसरे से अभिन्न हैं । जैसे मणि और मणि की प्रभा परस्पर अभिन्न है उसी प्रकार शक्ति और शक्तिमान् भी परस्पर अभिन्न हैं । इसलिए चाहे हम भगवान् की किसी भी रूप में आराधना करें, कल्याण स्वाभाविक है । पर जगदम्बा के रूप में उनकी आराधना इसलिए सुगम हो जाती है कि हम उनकी आराधना माता के रूप में करते हैं और संसार में माता का प्रेम वृद्धावस्था तक भी लोग भुला नहीं पाते हैं । जब भी कोई कष्ट आता है लोग पुकारते हैं 'अरी माँ' । माता ने जो प्रेम दिया है उसको मनुष्य भूल नहीं पाता है । वस्तुतः हमारे उपनिषदों में जो उपदेश आता है कि -

मातृदेवो भव । पितृदेवो भव । आचार्यदेवो भव ।

इसका अर्थ होता है कि माता को देवता मानने वाले बनो, पिता को देवता मानने वाले बनो और गुरु को देवता मानने वाले बनो । सबसे पहले माता का नाम लिया । क्यों ? क्योंकि जब बालक जन्म लेता है तब उसमें कोई भी ज्ञान नहीं होता । वह पशु जैसा होता है । जहाँ चाहे वहाँ लघुशंका कर देता है, शौच कर देता है, कुछ भी मुख में डाल लेता है । माँ ही उसको समझाती है कि यह करो और यह मत करो । उसको ज्ञान देकर पशु से मनुष्य बनाती है । इसलिए पहली गुरु माँ होती है और उसमें इतनी ममता होती है कि यदि बालक को कोई कष्ट हो जाए, ज्वर हो जाए तो रात-रात भर

जागती है, बेटे की पीठ पर हाथ फेरती है, सान्त्वना देती है और यदि किसी कारण से पिता उस बालक को मारने दौड़े तो कहती है कि मुझे मार लो लेकिन मेरे बेटे को मत मारो । बेटा कैसा भी हो माता कभी उसका बुरा नहीं चाहती । आद्य शङ्कराचार्य जी ने कहा है —

कुपुत्रो जायेत क्वचिदपि कुमाता न भवति ।

भले ही पुत्र कुपुत्र हो जाए लेकिन माता कभी कुमाता नहीं होती । इसलिए हमलोग माता को पहला स्थान देते हैं । आप देखिए कि यदि कोई शङ्कर का उपासक है तो वह गौरीशङ्कर बोलता है, राम का उपासक सीताराम बोलता है, नारायण का उपासक लक्ष्मीनारायण बोलता है और कृष्ण का उपासक राधेश्याम बोलता है । माँ पहले आती हैं और माँ के बाद पिता आता है । वही माँ भगवती हैं । भगवती का अर्थ क्या है ? भग जिसमें रहे वह भगवती हैं —

ऐश्वर्यस्य समग्रस्य धर्मस्य यशसः श्रियः ।
ज्ञानवैराग्ययोश्चैव षण्णां भग इतीरणा ॥

समग्र ऐश्वर्य, समग्र धर्म, समग्र यश, समग्र श्री, समग्र ज्ञान और समग्र वैराग्य जिनमें सदा रहे, वही भगवती हैं । ऐसी भगवती जिनके ऊपर अनुग्रह करती हैं उनके अर्थ, धर्म, काम और मोक्ष चारों पुरुषार्थ सुलभ हो जाते हैं । इसलिए उनका चरित्र मंगलमय है, मंगलकारी है ।

भगवती के माहात्म्य के सम्बन्ध में माना जाता है कि वे सबकी आराध्या हैं । सब इनकी आराधना करते हैं । भगवान् श्रीकृष्ण भगवती की आराधना करके राधा को प्राप्त करते हैं । भगवान् श्रीराम जगदम्बा की आराधना करके खोई हुई सीता को पुनः प्राप्त करते हैं । परशुराम उनकी उपासना करते हैं, बलराम उनकी उपासना करते हैं और इस तरह से बड़े-बड़े देवता भी भगवती की आराधना करते हैं । जब भगवती मणिद्वीप में निवास करती हैं तो उनका एक चरण सिंहासन पर होता है और दूसरा चरण मणिमय पीठ पर होता है । इन्द्र, चन्द्र, वरुण, यम, कुबेर सब अपने-अपने मुकुट उनके चरणों में झुकाते हैं और उठाते हैं तब ऐसा लगता है मानो देवतागण अपनी मुकुटमणि से भगवती के मणिपीठ की नीराजना माने आरती कर रहे

हैं । ऐसा महान् वैभव जगदम्बा का है । उन भगवती को इस देवी भागवत में प्रतिपाद्य माना गया है । उन्हीं के चरित्र का यहाँ पर वर्णन है । उनके मन्त्र की महिमा का यहाँ वर्णन है । उनके स्वरूप का वर्णन है। उनके धाम का वर्णन है । ऐसी भगवती जगदम्बा दश महाविद्या और नव दुर्गा के रूप में सर्वत्र पूजित होती हैं । पद्मावती के रूप में जैन सम्प्रदाय में भी पूजित होती हैं । उनकी आराधना से ही मनुष्य की मनोकामना सिद्ध होती है । ऐसी भगवती की कथा देवी भागवत में वर्णित है । श्रीमद्भागवत के वक्ता शुकदेव जी हैं और श्रोता राजा परीक्षित हैं लेकिन देवी भागवत की कथा में वर्णन आता है कि राजा परीक्षित को ब्राह्मण का शाप लग गया कि आज से सातवें दिन तक्षक नाग के काटने से तेरी मृत्यु हो जाएगी । राजा परीक्षित ने कई उपाय किए । उन्होंने चाहा कि तक्षक नाग काटने न पाए। सात खण्ड का उनका महल था । वे जाकर सातवें मंजिल पर बैठ गए । सब ओर से किवाड़ बन्द कर लिए, खिड़की बन्द कर लिया, किसी से भी मिलना-जुलना छोड़ दिया और यहाँ तक कि खाना-पीना भी छोड़ दिया । बहुत से मान्त्रिक और तान्त्रिक बुला लिए कि यदि तक्षक नाग आकर काट ले तो तुरन्त विष को उतार दिया जाए । सारा प्रबन्ध राजा ने कर लिया । भोजन इसलिए बन्द कर दिया कि भोजन के साथ कहीं तक्षक नाग न आ जाए । इस तरह से सात दिन पूरे हो गए । सायंकाल सूर्यास्त का समय होने वाला था । उन्होंने सोचा कि अब तो सात दिन पूरे हो गए । तक्षक नाग आ नहीं सका । अब हमें कोई नहीं मार सकता ।

इसी बीच में एक कथा आती है कि तक्षक नाग राजा परीक्षित को काटने के लिए चला । उधर से धन्वन्तरि चले और इधर से तक्षक भी चला। धन्वन्तरि एक ब्राह्मण के रूप में थे और तक्षक भी ब्राह्मण के रूप में था । धन्वन्तरि से तक्षक ने पूछा कि आप कहाँ जा रहे हैं ? उन्होंने बताया कि हम राजा परीक्षित के पास जा रहे हैं । उन्हें तक्षक नाग काटने वाला है, काटने पर उनका विष उतारने के लिए जा रहे हैं । मन्त्र के द्वारा जब हम औषधि देते हैं तो तक्षक ही क्या कोई भी नाग काटे तो कुछ प्रभाव नहीं पड़ता । विष निष्क्रिय हो जाता है । इस बात को सुनकर तक्षक ने कहा कि महाराज ! हम

ही तक्षक हैं, आप अपना प्रभाव दिखाइए । धन्वन्तरि ने कहा कि ठीक है । ऐसा करो कि इस हरे-भरे पेड़ को काटो । तक्षक ने पेड़ को काटा तो काटते ही उसमें आग लग गई । हरा-भरा पेड़ धू-धू कर जल गया और पूरा का पूरा भस्म बन गया । अब तक्षक ने कहा कि आप अपना प्रभाव दिखाओ तो धन्वन्तरि ने अपनी जड़ी-बूटी निकाली, घोंटा और ज्यों ही उस राख पर डाला तो वह राख फिर से हरा-भरा पेड़ हो गया । तक्षक ने सोचा कि ये तो बड़ा गड़बड़ हुआ । मेरे काटने से तो राजा को कुछ होगा नहीं । उसने धन्वन्तरि से कहा कि देखिए ! आप मत जाइए । वहाँ जाने से राजा परीक्षित बच जाएगा तो ब्राह्मणों का अपमान होगा क्योंकि इसने ब्राह्मण का अपमान किया है ।

तक्षक ने बताया कि एक बार एक ऋषि ध्यान में बैठे थे । उन्हें पता नहीं चला कि राजा उनके यहाँ आया है इसलिए उन्होंने राजा का स्वागत नहीं किया । इसी पर राजा क्रुद्ध हो गया और उस ऋषि के गले में मरा हुआ साँप लपेट दिया । यदि इस राजा परीक्षित का कुछ भी अनिष्ट नहीं हुआ तो ब्राह्मणों का अपमान आगे भी बराबर हुआ करेगा । ब्राह्मणों के अपमान से सनातन धर्म की हानि होगी । आपको जो कुछ धन चाहिए वह हम आपको दे देते हैं लेकिन आप लौट जाइए । ऐसा कहकर तक्षक ने धन्वन्तरि जी को लौटा दिया ।

अब सात दिन हो गए तो तक्षक नाग ने कुछ नागों को ऋषिकुमार बनाकर राजा परीक्षित के पास भेजा । वे ऋषिकुमार आए और राजा परीक्षित के मन्त्रियों से कहा कि हम राजा का दर्शन करना चाहते हैं । हम सब किसी यज्ञ में जा रहे हैं तो रास्ते में राजा का दर्शन करना आवश्यक समझते हैं । आप कृपा करके दर्शन करा दीजिए । मन्त्रियों ने दरवाजे के बाहर से राजा से पूछा कि कुछ ऋषिकुमार आए हैं और वे आपके दर्शन के अभिलाषी हैं। राजा ने कहा कि अब सातवें दिन के बाद ही दर्शन होगा । उन्होंने कहा कि जो फल हम लाए हैं वह राजा को अर्पित कर दीजिएगा । हमें आवश्यक कार्य से जाना है । ऐसा कहकर वे ऋषिकुमार फल की टोकरियाँ वहीं छोड़ गए । असल में वे तक्षक नाग के ही अंश थे । इधर सातवाँ दिन हुआ और

कोई नहीं आया तो राजा ने किवाड़ खोल दिए । सोचा कि सारी व्यवस्था तो हमने कर ही रखी है । अब पारण कर लेना चाहिए । पारण के लिए वही फल जो ऋषिकुमारों ने दिए थे, मँगाए गए । राजा ने उठाया और उसको तोड़ा तो उसके भीतर एक छोटा सा कीड़ा था । राजा ने कहा कि भाई ! ब्राह्मण का वचन झूठा भी नहीं होना चाहिए इसलिए तुम कीड़े ही हमें काट लो । राजा उस कीड़े को गले के पास ले गया और वो कीड़ा ही तक्षक बन गया । उसने अपना रूप बढ़ाया और सारे शरीर को लपेटकर राजा परीक्षित के पैर में जैसे ही काटा वैसे ही राजा की मृत्यु हो गई । कोई उपाय नहीं चला । मृत्यु एक ऐसी भयंकर वस्तु है कि जब ये आ जाती है तो प्राणी कोई भी उपाय करे कुछ चलता नहीं है ।

आस पास योधा खड़े, सबै बजावें गाल ।
माँझ महल से ले चला, ऐसा काल कराल ॥

चाहे कितना ही प्रयत्न करो जब मृत्यु आ जाती है तो उस समय वैद्य भी दवा को भूल जाता है । वैद्य भी समय पर नहीं मिलता है । मान्त्रिक-तान्त्रिक कोई भी उपलब्ध नहीं होते और मृत्यु उसको ले ही जाती है । इस तरह से राजा परीक्षित ब्राह्मण के शाप से मारे गए । अब उनकी दुर्गति हो गई। क्षत्रिय यदि युद्ध करते हुए मारा जाए तो उसकी सद्गति होती है । लिखा है —

द्वाविमौ पुरुषौ लोके सूर्यमण्डलभेदिनौ ।
परिव्राड् योगयुक्तश्च रणे चाभिमुखो हतः ॥

दो पुरुष सूर्यमण्डल का भेदन करके ब्रह्मलोक को जाते हैं - एक परिव्राड् माने योगयुक्त संन्यासी और दूसरा रण में युद्ध करते हुए मरता हुआ क्षत्रिय । राजा तो शाप से मरा अतः उसकी दुर्गति न हो । यही सोच उपाय करना बेटे का कर्त्तव्य होता है —

आत्मा वै जायते पुत्रः ।

मनुष्य का बेटा उसका अपना आत्मा ही होता है । इसलिए अपनी पत्नी को जाया कहा जाता है ।

यस्यां पुनर्जायते इति जाया ।

जिसमें मनुष्य फिर से जन्म लेता है वह जाया है । पिता ही अपनी स्त्री से पुत्र के रूप में जन्मता है । पुत्र जो है वह पिता के अधूरे काम को पूरा करने का दायित्त्व सम्भालता है । अगर पिता की दुर्गति हो गई हो तो उसकी सद्गति कैसे हो इसका उपाय करता है । पिण्डदान करता है, तर्पण करता है, उसका कर्ज चुकाता है, अगर कोई ग्रन्थ अधूरा रह गया हो तो उसे पूरा करता है, व्यवसाय अधूरा रह गया हो तो उसे आगे बढ़ाता है । यही पुत्र का कर्त्तव्य होता है । अतः जनमेजय ने राजा परीक्षित का कैसे कल्याण हो, कैसे पिता को नरक न जाना पड़े इसका उपाय व्यास जी से पूछा तो व्यास जी ने राजा परीक्षित को श्रीमद्देवीभागवत की कथा सुनाई । इस देवी भागवत की कथा सुनने से राजा परीक्षित नरक से निकलकर भगवती के मणिद्वीप में पहुँच गए और उनका कल्याण हो गया । श्रीमद्भागवत में कथा है कि राजा परीक्षित को वैराग्य हो गया तो वे गंगा किनारे विरक्त होकर बैठ गए और श्रीशुकदेव जी ने आकर उन्हें श्रीमद्भागवत की कथा सुनाई । उस कथा को सुनकर राजा को उसी जन्म में ज्ञान हो गया और उनकी मुक्ति हो गई ।

दो प्रकार की कथाएँ हैं । इनका परस्पर विरोध हैं । श्रीमद्भागवत के शुकदेव जी ब्रह्मचारी हैं, परमहंस हैं और देवीभागवत के शुकदेव जी ने गृहस्थाश्रम में प्रवेश किया है । ऐसी स्थिति में यह कहना उचित होगा कि यह भेद कल्पभेद के कारण है । पाद्म कल्प में श्रीमद्भागवत की कथा होती है और रैवत कल्प में देवीभागवत की कथा होती है । रामचरितमानस में लिखा है —

नाना भाँति राम अवतारा । रामायन सत कोटि अपारा ॥
कलपभेद हरिचरित सुहाए । भाँति अनेक मुनीसन्ह गाए ॥
करिअ न संसय अस उर आनी । सुनिअ कथा सादर रति मानी ॥

कल्पभेद से नाना प्रकार के चरित्र भगवान् के होते हैं । दोनों कल्पों की अलग-अलग कथाएँ हैं । इसलिए संशय नहीं करना चाहिए ।

भगवती माँ होती हैं और माँ में कुछ विशेषताएँ हैं । एक तो यह विशेषता है कि यदि उसके बेटे का किसी से झगड़ा हो जाए तो अपने कसूरवार बेटे का ही पक्ष लेती है । बेटे का दोष नहीं देखती । बेटे में कोई

दोष है तो वह उस दोष को दूर तो करेगी लेकिन दोष को देखेगी नहीं । ऐसी स्थिति में अपराधी जीव, जिससे अनेकों प्रकार के अनुचित कर्म हो चुके हैं, पाप में लीन है, वह भगवान् से डरता है । बालक पिता से डरता है । सोचता है कि यदि हमारे दुर्गुणों का पता हमारे पिताजी को लग गया तो वे घर से निकाल देंगे । लेकिन माँ ऐसा नहीं करेगी । अगर पिता ने घर से बेटे को निकाल दिया है और बेटा कहीं भूखा-प्यासा दिख जाता है तो भी उसे घर बुलाकर छुपाकर भोजन कराती है और कहती है कि भोजन करके चला जा। कहीं तेरा पिता तुझे न देख ले । किसी तरह से खिला देती है । अपने बेटे का दोष न देखना, उसका पक्षपात करना, यह सब जो माँ का वात्सल्य है यह उसका नहीं है । यह जगदम्बा का है । जगज्जननी का है । उस जगज्जननी के द्वारा ही हमारी मिट्टी की माँ में भी यह गुण आया है ।

आप देखिए कि मनुष्य की माँ अपने बेटे का पालन-रक्षण करती है। हम उसके मूल में स्वार्थ भी देख सकते हैं । माँ यह सोचकर अपने बेटे का पालन करती है कि बुढ़ापे में बेटा हमारी सेवा करेगा । लेकिन गाय और उसके बछड़े को देखिए । जब तक बछड़ा चरने योग्य नहीं हो जाता तब तक वह विवश होकर स्वयं चारा चरने जाती है और चरते समय भी अपने बछड़े का ही स्मरण रखती है । शाम को लौटती है तो अपने स्तनों से दूध बहाती हुई अपने बछड़े को प्यार से देखती है । आँख से देखती है मानों पी जाएगी, चाटती है मानो आत्मसात कर रही है । इस तरह से अपने बछड़े का पालन करती है । यहाँ तक कि हम देखते हैं कि कपिला गौ जो अत्यन्त सीधी होती है, जब उसके नवजात बछड़े को कोई छूने भी जाता है तो उसको भी सींग दिखाती है । यह प्यार कहाँ से आया ? वह बछड़ा बड़ा होने के बाद क्या अपनी माँ को पहचानेगा ? उसको याद भी नहीं रहेगा कि यह मेरी माँ है । वह चल देगा । तब भी माँ उससे उतना ही प्यार करती है ।

अजातपक्षा इव मातरं खगाः स्तन्यं यथा वत्सतराः क्षुधार्ताः।
प्रियं प्रियेव व्युषितं विषण्णा मनोऽरविन्दाक्ष दिदृक्षते त्वाम्॥

इसी तरह से पक्षी । जब अण्डा देने का समय आता है तो पहले से ही घोंसला बनाती है । नरम रुई, नरम चारा लाकर ऐसे दुर्गम स्थान पर

घोंसला बनाती है जहाँ किसी का हाथ न पहुँचे । अण्डे देती है और फिर उसे प्यार से सेती है, अण्डे को बड़ा करती है और जब वह अण्डा फूट जाता है तब उस नवजात पक्षी के पंख नहीं होते और चोंच भी बड़ी नरम होती है । वह स्वयं चारा चुग नहीं सकता । ऐसे में वह माँ पक्षी जंगल में जाकर चारा चुगती है । अपने भूखी रहकर अपनी गले की थैली में दानों के कण एकत्र करती है और जब लौटकर आती है तो उसके छोटे-छोटे बच्चे पक्षी चीं-चीं करते हुए चोंच खोलकर अपनी माँ की ओर देखते हैं । माँ अपने गले की थैली से चारा निकालकर प्यार से उन्हें खिलाती है । स्वयं भले ही भूखी रह जाए पर उनका पेट भरती है । वे पक्षी भी जब पंख आ जायेंगे तो क्या अपनी माँ को पहचानेंगे कि मेरी माँ कहाँ है ? उसको ज्ञान नहीं होता । उस समय उस माँ पक्षी के मन में जो प्रेम है वह निःस्वार्थ प्रेम है । यह निःस्वार्थ वात्सल्य उसे जगदम्बा के द्वारा मिला हुआ है । जगत् की पालिनी शक्ति ही इन सबके हृदय में वात्सल्य का भाव भर देती है । ऐसी जगदम्बा के चरित्र और नवाह्न पारायण का बड़ा महत्त्व है ।

पहले दिन माहात्म्य की ही कथा होती है । इसमें बतलाया गया है कि एक बार भगवान् श्रीकृष्ण को चोरी का लाञ्छन लग गया । सत्राजित् नाम का एक भोजवंशी यादव था । उसने सूर्य की आराधना की और सूर्यनारायण ने प्रसन्न होकर उसको एक मणि प्रदान की थी । मणि देकर कहा था कि जहाँ भी यह मणि रहेगी वहाँ आधि, व्याधि, रोग, सन्ताप, दुःख, महामारी आदि कुछ भी नहीं होगा । प्रतिदिन यह मणि आठ बार स्वर्ण देगी। बड़ी प्रकाशयुक्त मणि थी । सत्राजित् उस मणि को अपने गले में धारण कर उग्रसेन की सुधर्मा सभा में आया । उसका प्रकाश पहले से ही सभा में आने लगा तो लोग कहने लगे कि भगवान् श्रीकृष्ण का दर्शन करने के लिए साक्षात् सूर्यनारायण आ रहे हैं। भगवान् ने कहा कि यह सूर्यनारायण नहीं अपितु सत्राजित् हैं जो सूर्य का उपासक है । सभा में उसका स्वागत किया गया । वह बैठा । भगवान् श्रीकृष्ण ने उससे कहा कि देखो मित्र ! अपने पास कोई अच्छी वस्तु हो तो राजा को समर्पित कर देना चाहिए । मणि आप राजा उग्रसेन को दे दीजिए । सत्राजित् को बुरा लगा और वहाँ से विमना होकर

चला गया । जाकर अपनी पत्नी से कहा कि श्रीकृष्णं मुझसे मणि माँग रहे थे और कह रहे थे कि मणि उग्रसेन को दे दो । पत्नी से कह दिया कि किसी को बताना मत ।

आप यदि किसी बात को पूरे नगर में पहुँचाना चाहें तो अपनी पत्नी से कह दीजिए और साथ में कह दीजिए कि किसी को बताना मत तो पूरे नगर में बात चली जाएगी । इनको शाप है कि इनके पेट में बात पचती नहीं। अब उसने सबसे कहना शुरु कर दिया ।

भाई प्रसेन ने जब सुना तो भगवान् श्रीकृष्ण को अपशब्द कहे और सत्राजित् से बोला कि मणि हमें दो, हम किसी को नहीं देंगे । वह मणि अपने गले में डालकर शिकार खेलने के लिए जंगल में चला गया । जंगल में एक सिंह ने प्रसेन पर आक्रमण कर उसे मार डाला और मणि छीन ली। प्रसेन जब जंगल से नहीं लौटा तो स्त्री ने सबसे कहना प्रारम्भ कर दिया कि मणि के लोभ से ही भगवान् श्रीकृष्ण ने प्रसेन को मारा है । जब भगवान् श्रीकृष्ण को इस बात का पता चला तो इस कलंक का मार्जन करने के लिए कुछ यादवों के सहित वे वन में गए ।

कहते हैं कि भगवान् श्रीकृष्ण ने भादो महीने के चौथ का चन्द्रमा देख लिया था । भाद्रपद मास के शुक्ल पक्ष की चतुर्थी के दिन चन्द्रमा को देखने से कलंक लगता है और यह प्रायः होता है । लोग सोचते हैं कि हम चन्द्रमा को आज के दिन न देखें और वे भूल से देख बैठते हैं । कुछ यादवों को साथ लेकर भगवान् जंगल में गए और देखा कि प्रसेन वहाँ मरा पड़ा है। सिंह ने उसको मारा है । अब वे सिंह के पैरों के निशान देखते हुए आगे बढ़े तो देखा कि सिंह भी मरा पड़ा है । एक भालू ने उसको मारा है और मणि सिंह के पास भी नहीं थी तो उन्होंने सोचा कि भालू ले गया । अब भालू के पदचिह्नों के आधार पर आगे बढ़े तो एक बड़ी भयंकर गुफा दिखाई पड़ी। वह गुफा जाम्बवान् नाम के भालू की थी । भगवान् राम के समय ये उनका मन्त्री हुआ करता था । वह चिरजीवी था । उस गुफा में रहता था। उसने अपने एक छोटे से बालक को मणि खेलने के लिए दिया । भगवान् आगे बढ़े तो जब गुफा का द्वार आया तो साथ के लोगों ने भगवान् श्रीकृष्णसे कहा कि यह तो

पता लग ही गया कि मणि को भालू ले गया है । आपके कलंक का तो मार्जन हो गया कि आपने मणि नहीं ली है । अब वापस लौट चलिए । भगवान् ने कहा कि हम तो मणि का पता लगायेंगे । हम अकेले गुफा के भीतर जा रहे हैं । बारह दिन में यदि हम वानस न आएँ तो तुम समझना कि हम मारे गए और अब नहीं लौटेंगे । इधर जब भगवान् गुफा के भीतर पहुँचे तो उन्होंने देखा कि एक धाय बालक के हाथ में मणि देकर बोल रही थी —

सिंहप्रसेनमवधीत् सिंहो जाम्बवता हतः ।
सुकुमारकमारोदीः तव ह्येष स्यमन्तकम् ॥

भगवान् श्रीकृष्ण ने उस बालक के हाथ से मणि लेना चाहा तो धाय चिल्लाई । जाम्बवान् को पता चला तो वह आया और उसका भगवान् श्रीकृष्ण के साथ युद्ध होने लगा । इधर बारहवें दिन जब भगवान् श्रीकृष्ण नहीं लौटे तो गुफा के बाहर खड़े हुए यादव लौटकर गए और द्वारका में जाकर बताया कि भगवान् श्रीकृष्ण इस प्रकार गुफा में गए थे और भालू ने सम्भवतः उनको मारकर खा लिया है । सबलोग सत्राजित् को गाली देने लगे। उन्होंने सबको बताया कि सिंह ने प्रसेन को मारा, भालू ने सिंह को मारा और भालू गुफा में चला गया तो भगवान् श्रीकृष्ण के पिता वसुदेव जी का हृदय बहुत व्यथित हो गया, व्याकुल हो गया । वे अपने बेटे के न आने से दुःखी थे । इतने में नारद जी ब्रह्मलोक से वहाँ आए और उन्होंने वसुदेव जी से उनके दुःख का कारण पूछा तो उन्होंने बताया कि हमारा बेटा गुफा में चला गया है । पता नहीं बचा है कि नहीं ? हम उसका दर्शन चाहते हैं। नारद जी ने कहा कि इसके लिए देवीभागवत का नवाह्न पारायण सुनो । फिर नारद जी ने वसुदेव जी को विधिवत् पारायण सुनाया, ब्राह्मणों को दान-दक्षिणा दी, भोजन कराया, कन्याओं को भोजन कराया । पूर्णाहुति हुई तो इधर 27वाँ दिन आ गया था । भगवान् श्रीकृष्ण ने जाम्बवान् की छाती में जोरों से मुक्का मारा तो मुक्के की चोट से वह घुटने के बल बैठ गया और बोला कि कहीं आप भगवान् श्रीराम तो नहीं है ? क्योंकि उनकी ही शक्ति मुझे पराजित कर सकती है । निश्चित रूप से आप मेरे प्रभु श्रीराम ही हैं ।

बात क्या थी कि जब भगवान् श्रीराम का राक्षसों से युद्ध होता था तो

जाम्बवान् के मन में अभिमान आता था कि राम जी तो कीड़े-मकोड़ों जैसे राक्षसों से लड़ते हैं । मुझसे लड़ते तो पता चलता । भगवान् ने कहा था कि अच्छी बात है । कभी तुमसे भी निपटेंगे । उसकी युद्ध की इच्छा यहाँ पूरी हुई । तो 27वें दिन जब मुक्का लगा तो कहने लगा कि आप श्रीराम हैं । आप हमें राम के रूप में दर्शन दीजिए तो भगवान् श्रीकृष्ण ने जाम्बवान् को श्रीराम के रूप में दर्शन दिया और कहा कि मणि की चोरी हमको लगी है। हम उसी के लिए यहाँ आए हैं । जाम्बवान् ने कहा कि एक नहीं, आप दो मणि ले जाओ । हमारी कन्या है जाम्बवती । इस कन्या को हम आपको अर्पित करते हैं और दहेज में मणि देते हैं । जाम्बवती को लेकर भगवान् श्रीकृष्ण मणि को गले में डाले आए । इधर ब्राह्मण भोजन हो रहा था । यज्ञ का धुआँ चारों ओर फैल रहा था । समस्त द्वारकावासी श्रीमद्देवीभागवत सुन रहे थे । श्रीमद्भागवत में भी यह कथा आती है कि जब भगवान् श्रीकृष्ण चले गए तो सभी द्वारकावासी देवी की आराधना के लिए नगर से बाहर आ गए थे । देवीभागवत की कथा के श्रवण का यह फल था कि वसुदेव जी को अपने खोए हुए पुत्र की पुनः प्राप्ति हो गई ।

इसी प्रकार अन्यान्य कथाएँ भी हैं कि बड़े-बड़े दुर्गम कार्य भगवती की आराधना से लोगों के सम्पन्न हुए । रेवत नाम के राजा को मनुरूप की प्राप्ति हुई और इसी तरह से भगवान् शङ्कर की आराधना से स्त्री बन चुके सुद्युम्न को पुरुषत्त्व की प्राप्ति हो गई । बड़े-बड़े असम्भव कार्य देवीभागवत की कथा से पूर्ण होते हैं । इसके श्रवण से पापी पापमुक्त हो जाते हैं । बन्ध्या स्त्री को पुत्र की प्राप्ति होती है । कुमारियों को पति की प्राप्ति होती है । निर्धन को धन की प्राप्ति होती है । रोगी रोगमुक्त होता है और जिज्ञासु; जो मोक्ष चाहता है उसको मोक्ष की प्राप्ति होती है ।

बताया गया है कि जगदम्बा की आराधना से अर्थ, धर्म, काम और मोक्ष चारों पुरुषार्थों की सिद्ध होती है । अर्थ माने धन, यही धन धर्म में काम आता है । धर्म मरने के बाद परलोक में काम आता है । काम माने मनुष्य को संसार के सुख की प्राप्ति होती है और अन्त में भवचक्र से उसका छुटकारा होता है । इसलिए श्रद्धापूर्वक और संयम के साथ कथा सुननी

चाहिए —

लिखा है कि योग्य वक्ता से कथा सुननी चाहिए । वक्ता का पूजन करना चाहिए । श्रोता को परिमित भोजन करना चाहिए । कुछ लोग उपवास करते हुए सुनते हैं और कुछ लोग फलाहार करते हुए सुनते हैं लेकिन लिखा है कि —

भोजनं तु व्रं मन्ये कथाश्रवणकारणम् ।
नोपवासं परं मन्ये कथाविघ्नकरं यदि ॥

यदि उपवास करने से कथा में विघ्न होता है तो उपवास न करे, भोजन सूक्ष्म रूप से करे जिससे बीच में आलस्य न आए । सावधान होकर मन को एकाग्र कर कथा के एक-एक अक्षर का श्रवण करे । जो पूरा श्रवण कर सकता है वह तो फल का भागी होगा ही लेकिन यदि कोई एक बार आकर इस देवीभागवत का एक श्लोक भी सुन ले, एक अध्याय सुन ले, कान में यदि एक भी श्लोक पड़ जाए तो वह भी कल्याणकारी होता है । देवी भागवत का पारायण संस्कृत में सुनना चाहिए क्योंकि इसका प्रत्येक शब्द देवीरूप है । इस शब्द को सुनकर मानो हम जगदम्बा को अपने कान के माध्यम से अपने हृदय में ले जा रहे हैं । इस भावना से भगवती के इस चरित्र का श्रवण करना चाहिए । बस इतना ही कहकर आज का प्रवचन पूर्ण करते हैं । कल से विद्वान् आपको कथा सुनायेंगे । हम भी यथाशक्ति आपको सुनायेंगे । अब यहीं कथा का विराम करते हैं । थोड़ा सा भगवान् का नाम लीजिए ।

श्री राम जय राम जय जय राम
प्यारे जरा तो मन में विचारो क्या साथ लाए अरु ले चलोगे
जाता सदा साथ यही पुकारो गोविन्द दामोदर माधवेति
गोविन्द दामोदर माधवेति हे कृष्ण हे यादव हे सखेति
श्रीकृष्ण गोविन्द हरे मुरारे हे नाथ नारायण वासुदेव
श्रीकृष्ण गोविन्द हरे मुरारे हे नाथ नारायण वासुदेव
धर्म की जय हो । अधर्म का नाश हो ।
प्राणियों में सद्भावना हो । विश्व का कल्याण हो ।
गोमाता की जय हो । गोहत्या बन्द हो ।
हर हर महादेव ।

द्वितीय दिवस

जगदम्बा ही चैतन्य शक्ति हैं

समुपस्थित विद्वद्वृन्द ! देवियो ! सज्जनो !

श्रीमद्देवीभागवत श्रीमत् माने श्रीयुक्त है । इसका प्रारम्भ गायत्री मन्त्र से होता है और जो श्रीमद्भागवत है उसमें भी गायत्री मन्त्र का एक शब्द आता है । **सत्यं परं धीमहि** । धीमहि शब्द आता है और यहाँ भी उस गायत्री का जो तात्पर्यार्थ है उसके साथ धीमहि शब्द आता है ।

सर्वचैतन्यरूपां तां आद्यां देवीं च धीमही
बुद्धिं या नः प्रचोदयात् ।

हम जिन जगदम्बा की आराधना कर रहे हैं वे मात्र जड़ प्रकृति नहीं हैं । वे चैतन्यरूपा हैं । सब प्राणियों में जो चैतन्य है वह चैतन्य अहं अहं माने मैं मैं रूप में है । मैं के रूप में जो सब प्राणियों के हृदय में स्फुरित हो रहा है वह क्षेत्रज्ञ चैतन्यरूप है । उसी क्षेत्रज्ञ को यहाँ पर जगदम्बा के रूप में प्रतिपादित किया जा रहा है । वास्तव में जो परमात्मा है उसमें न तो पुल्लिङ्ग है, न स्त्रीलिङ्ग हैं और न ही नपुंसकलिङ्ग है । अपनी भावना के अनुसार जिस रूप में भी हम उनको देखना चाहें देख सकते हैं । एक कथा हम सुनाया करते हैं । कोई भक्त पण्डित था । विन्ध्याचल में दुर्गा सप्तशती का पाठ कर रहा था । मध्यम चरित्र में आता है —

या देवी सर्वभूतेषु मातृरूपेण संस्थिता ।
नमस्तस्यै नमस्तस्यै नमस्तस्यै नमो नमः ॥

जो देवी सब प्राणियों में माता के रूप में स्थित हैं उसको हम नमस्कार करते हैं । बारम्बार नमस्कार करते हैं । पण्डित व्याकरण नहीं जानता था । वह कहता था —

नमस्तस्मै नमस्तस्मै नमस्तस्मै नमो नमः ।

तस्यै की जगह वो तस्मै कहता था । अपने बगल में वैयाकरण विद्वान् बैठा था उसने डाँटा कि तस्यै के स्थान पर तस्मै क्यों कह रहा है ? स्त्री की वन्दना कर रहा है कि पुरुष की वन्दना कर रहा है ? वह पण्डित झेंप गया । उसको मन में बड़ा दुःख हुआ । भक्त के हृदय के दुःख को भगवती सहन नहीं कर पाईं । वैयाकरण पण्डित जब अपने घर में जाकर सोया तो रात्रि में उसको अपनी छाती में वजन का अनुभव हुआ । आँख खुली तो एक दिव्य तेज निकला और बोला कि बोल ! मैं स्त्री हूँ कि पुरुष हूँ ? उसने हाथ जोड़कर कहा कि आप सबकुछ हैं । आपका कोई अन्तर नहीं है । जगदम्बा सब प्राणियों के भीतर चैतन्य के रूप में अवस्थित हैं ।

कहते हैं तां माने जो सब प्राणियों के हृदय में चैतन्य के रूप में विद्यमान हैं, जो सभी का क्षेत्रज्ञ हैं वह जगदम्बा हमारी आत्मा से अभिन्न है। आत्मा में और उनमें कोई अन्तर नहीं है ।

आद्यां देवीं च धीमहि ।

उसी सर्वव्यापिनी पराशक्ति को त्रिपुरसुन्दरी कहते हैं । तीनों पुरों में जो साक्षी रूप से विद्यमान हैं । स्थूल शरीर पहला पुर, सूक्ष्म शरीर दूसरा पुर और कारण शरीर तीसरा पुर । तीनों को जो जानती हैं । जागृत को जानती हैं, जागृत के न रहने पर स्वप्न आ जाता है तो वह स्वप्न को भी जानती हैं और स्वप्न के भी न रहने पर घोर निद्रा आ जाती है तो उसको भी जानती हैं। तीनों अवस्थाओं में जो एकरस साक्षी रूप से विद्यमान हैं उन्हीं का नाम त्रिपुरसुन्दरी है । वे सबके हृदय में निवास करती हैं । उस परमतत्त्व को, पराविद्या को जो अपनी आत्मा से अभिन्न समझ लेता है उसकी बुद्धि परमात्मा का साक्षात्कार करके बन्धन से प्राणी को मुक्त कर देती है । क्योंकि आत्मसाक्षात्कार से ही बन्धन से मुक्ति मिलती है ।

देवीभागवत का प्रारम्भ कैसे होता है ? इसके सम्बन्ध में एक कथा आती है कि एक राजर्षि सत्यव्रत हुए उन्होंने तपस्या करके वरदान प्राप्त किया कि हम प्रलय देखेंगे । सातवें दिन इतनी वर्षा हुई कि सारा जगत् जलाप्लावित हो गया । सर्वत्र जल ही जल हो गया । उस समय एक नाव आई । उस नाव

में पृथ्वी के बीज रखकर सप्तर्षियों के सहित राजर्षि बैठ गए और भगवान् ने मत्स्यावतार धारण करके उसकी रस्सी को अपने सींग में बाँध दिया । प्रलय का अथाह जल देख रहे थे । देखते-देखते प्रयाग पहुँचे । प्रयाग में देखा कि एक वटवृक्ष है जिसका नाम अक्षय वट है । आप यदि प्रयाग जाएँ तो किले के भीतर अभी भी वह वटवृक्ष मिलता है । मुगलों के काल में जलाया गया लेकिन जल नहीं पाया । अभी तक अक्षय है । उस अक्षय वट में एक छोटा सा बालक बैठा है । बालमुकुन्द ।

करारविन्देन पदारविन्दं मुखारविन्दे विनिवेशयन्तम् ।
वटस्य पत्रस्य पुटे शयानं बालं मुकुन्दं मनसा स्मरामि ॥

छोटे से रूप में भगवान् उस वटवृक्ष के पत्ते पर बैठे हैं । अपने करारविन्द से, करकमल से दाहिने चरण को पकड़कर अपने ही दाहिने पैर का अँगूठा अपने मुख में डालकर चूस रहे हैं । ऐसे बालमुकुन्द का दर्शन किया । उस बालमुकुन्द भगवान् के मुख से निकला —

सर्वं खल्विदं ब्रह्म । नेह नानास्ति किञ्चन ।

सब कुछ ब्रह्म है । भगवती कहती है कि सब कुछ मैं हो हूँ । मेरे बिना कोई दूसरी वस्तु नहीं है । ये शब्द बालमुकुन्द जी को सुनाई पड़ा तो हुआ ये कि भगवान् बालमुकुन्द विष्णु भगवान् का अवतार हैं । कथा आती है कि सृष्टि के प्रारम्भ में विष्णु भगवान् कारणवाड़ी में शेषनाग की शय्या पर शयन करते हैं । उनकी नाभि से कमल निकलता है । उस कमल के ऊपर ब्रह्मा उत्पन्न होते हैं । बहुत समय तक ब्रह्मा उसका अन्त खोजते रहे अन्त में भगवान् ने उन पर कृपा की । ब्रह्मा जी ने भगवान् विष्णु की स्तुति की और कहा कि आप सारे जगत् के कारण हैं । आपका ही मैं पुत्र हूँ । सारा जगत् आपसे ही उत्पन्न होता है । आप ही इसकी रक्षा करते हैं और आपमें ही इसका विलय हो जाता है । भगवान् विष्णु बोले कि ऐसा नहीं है । मेरा भी कारण है । मेरा कारण परमशक्ति है । जगदम्बा है । उस जगदम्बा से ही जगत् की उत्पत्ति होती है और मुझे जगत् उत्पन्न करने की शक्ति वही देती हैं। सृष्टि के आदि में एक जगदम्बा ही थीं । उस जगदम्बा ने जगत् को उत्पन्न करने के लिए जब संकल्प किया, मन बनाया तो ब्रह्मा की उत्पत्ति हुई । ब्रह्मा

ने हाथ जोड़कर पूछा कि माँ ! क्या आज्ञा है ? तो भगवती बोली कि सृष्टि कर । बोले कि शक्ति दो । बिना शक्ति के तो कुछ हो नहीं सकता । सरस्वती रूप में अपनी अंशभूता शक्ति माता ने ब्रह्मा को प्रदान की । सृष्टि होती थी और नष्ट हो जाती थी तो जब उसकी रक्षा के लिए माता ने मन किया तो विष्णु की उत्पत्ति हुई । विष्णु हाथ जोड़कर बोले कि माँ क्या आज्ञा है ? बोलीं कि पालन कर । बोले शक्ति दो तो माता ने शक्ति दी रमा । उनके बल पर भगवान् विष्णु जगत् का पालन करने लगे । फिर बहुत लोग बढ़ गए । कोई मरता ही नहीं था । जगदम्बा ने थोड़ा क्रोध किया तब रुद्र उत्पन्न हो गए। रुद्र ने पूछा कि माँ क्या आज्ञा है ? तो बोली कि संहार कर । बोले शक्ति दो तो गौरी शक्ति दे दी । अब भगवान् शङ्कर बोले कि अब हम थोक में सबका संहार कर दें कि थोड़े-थोड़े करें तो भगवती ने कहा कि थोड़े-थोड़े करो । एकदम से सबको मत मारो । भगवान् शङ्कर ने मृत्यु उत्पन्न की । मृत्यु पैदा हुआ तो वह मारने लगा । जब किसी के घर में कोई मरता है तो लोग व्याकुल होकर रोते हैं । चिल्लाते हैं तो यह सब देखकर मृत्यु को बड़ी ग्लानि हुई कि हम यह काम नहीं करेंगे । उन्होंने भगवती से कहा कि इस काम से हम त्याग पत्र देते हैं । क्योंकि लोग दुःखी होते हैं, बहुत रोते हैं और हमको कोसते हैं । भगवती ने कहा कि करना तो पड़ेगा । लेकिन आज से कोई तुम्हारा नाम नहीं लेगा । इसलिए तब से जब कोई मरता है तो लोग ये नहीं कहते कि मौत ले गई । कहते हैं कि सब कुछ अच्छा था, रोग हो गया, हार्ट अटैक हो गया । कोई न कोई कारण लोग बतलाते हैं । इसलिए कहावत है—

हिल्ले रोजी, बहाने मौत ।

हिल्ले से रोजी होती है और मौत बहाने से होती है । बहाने से मृत्यु होने लगी । ब्रह्मा, विष्णु और रुद्र भगवती की दी हुई शक्ति से ही अपना अपना कार्य करते हैं । वही शक्ति सबका आधार है । उस शक्ति के ही द्वारा इस जगत् का संचालन होता है । यही बात भगवान् विष्णु ने ब्रह्मा जी को बताई ।

एक बार नारद जी ब्रह्मा जी के पास गए । उनकी स्तुति करने लगे

तो ब्रह्मा जी ने भी कहा कि मुझमें जो भी शक्ति है वह जगदम्बा की दी हुई है और किसी की नहीं है । बताया कि सृष्टि के प्रारम्भ में जगदम्बा ने भगवान् विष्णु को आकाशवाणी से जो उपदेश दिया था कि सब कुछ मैं ही हूँ और मुझसे भिन्न कुछ भी नहीं है यही देवीभागवत का मन्त्र है । यहाँ से देवी भागवत प्रारम्भ होता है । नारद जी ने यही बात व्यास जी को सुनाई । व्यास जी ने अपने पुत्र शुकदेव जी को सुनाया । शुकदेव जी उसी बात को लेकर 18300 श्लोक बनाए । इन श्लोकों के द्वारा इसी तत्त्व का प्रतिपादन हुआ कि ब्रह्म को छोड़कर कोई दूसरी वस्तु नहीं है ।

सजातीय, विजातीय और स्वगत भेदशून्य एक अखण्ड ब्रह्म ही सब कुछ है । यह तत्त्वज्ञान, अद्वैत तत्त्व का बोध ही देवी भागवत का सार है । इसी को समझाने के लिए नाना प्रकार की कथाएँ हैं । कथाओं के द्वारा मनुष्य के मन में वैराग्य होता है । बीच-बीच में कुछ ज्ञान की बातें भी आ जाती हैं तो ज्ञान हो जाता है । हमारे पुराण मनुष्य को धीरे-धीरे तत्त्वज्ञान करा देते हैं। कोई गीता पढ़े, उपनिषद् पढ़े तो सीधे उसे समझ में नहीं आता। जैसे समझ लो कि बुखार चढ़ा है । बुखार वाले को यदि कोई कुनैन दे तो कुनैन इतना कड़वा होता है कि कोई खाना नहीं चाहता । यदि उसी कुनैन को मलाई में लपेट कर दे दे तो गले के नीचे उतर जाती है । मलाई के साथ-साथ वह कुनैन भी पच जाती है और बुखार का नाश कर देती है। पुराण कथारूपी मलाई से तत्त्वज्ञान कराया जाता है । व्यास जी ने 18300 श्लोकों में इस देवी भागवत का वर्णन किया है । इनके पुत्र शुकदेव जी थे।

शुकदेव जी की उत्पत्ति कैसे हुई ? एक दिन व्यास जी यज्ञ के लिए अरणिमन्थन कर रहे थे । अरणि आप लोगों ने देखा होगा । जो याज्ञिक हैं वे लोग जानते होंगे कि दो लकड़ी होती है एक ऊपर और एक नीचे । उसको मथते हैं तो उस लकड़ी के भीतर से आग पैदा हो जाती है । फिर उसमें कण्डा डालते हैं, तृण डालते हैं तो धीरे-धीरे अग्नि प्रज्ज्वलित हो जाती है । जैसे अरणिमन्थन से अग्नि पैदा होती है उसी प्रकार अरणि से आरणेय शुकदेव जी की उत्पत्ति होती है । जब वे बड़े होते हैं तो उन्हें तीव्र वैराग्य हो जाता है । वे कहते हैं कि अब हम तपस्या करेंगे । संसार से विरक्त होकर

समाधि का अभ्यास करेंगे । व्यास जी ने सोचा कि एक ही बेटा उत्पन्न हुआ है । यदि ये भी विरक्त हो जाएगा तो हमारे वंश में कौन रहेगा ? इसलिए इसको गृहस्थाश्रम में भेजने लगे । समझाने लगे कि गृहस्थाश्रम कोई खराब आश्रम नहीं है । पहले गुरुकुल में जाकर वेद-वेदाङ्गों का अध्ययन करके समावर्तन संस्कार करके वहाँ से लौटकर आओ। फिर गृहस्थाश्रम में जाओ और सन्तान उत्पन्न करके तीन ऋणों से मुक्त हो जाओ । फिर विरक्त हो जाना।

मनुष्य जब जन्म लेता है तो उसके ऊपर तीन ऋण होते हैं - देवऋण, ऋषिऋण और पितृऋण । ऋषिऋण वेद के अध्ययन से चुकता है, देवऋण यज्ञ से चुकता है और पितृऋण सन्तान उत्पन्न करने से चुकता है । सन्तान जब उत्पन्न होती है तो वही पितरों को श्राद्ध-तर्पण करके उनके मरने के बाद यदि उनका मोक्ष नहीं हुआ है तो उन्हें तृप्त करती है ।

जीविते वाक्य करणात् मरणे भूरिभोजनात् ।
गयायां पिण्डदानाच्च त्रिभिः पुत्रस्य पुत्रता ॥

पुत्र उसको कहते हैं जो पिता माता के जीवित रहते हुए उनकी आज्ञा का पालन करे । जब पिता माता मर जाएँ तो लोगों को भोजन कराएँ और गया में जाकर पिण्डदान करे । यदि ये तीन काम वह नहीं करता तो पुत्र काहे का ? पुत्र इसीलिए उत्पन्न किया जाता है कि पितरों को मुक्त करे ।

बहून् पुत्रान् हि इच्छेत कश्चिदेको गयां व्रजेत् ।

कहा गया है कि बहुत से पुत्रों की इच्छा करना चाहिए कि शायद उनमें से कोई एक गया चला जाए । आजकल के बेटे कहते हैं कि महाराज! हम गया नहीं जायेंगे । वहाँ पण्डे घेर लेंगे । एक बार की बात है आश्विन के महीने में गंगा किनारे लोग पितरों का तर्पण कर रहे थे । एक नास्तिक आ गया । वह भी पानी उलीचने लगा तो लोगों ने कहा कि तुम तो नास्तिक हो। पितरों को नहीं मानते हो तो पानी क्यों उलीच रहे हो ? बोला कि हम अपने खेत में पानी सींच रहे हैं । बाकी लोग बोले कि खेत यहाँ से बहुत दूर है । तुम्हारे हाथ का पानी वहाँ तक कैसे जाएगा ? नास्तिक बोला कि तुम सबके पितर भी मरकर स्वर्ग चले गए हैं । तुम्हारा पानी वहाँ तक कैसे जाएगा ?

उसकी बातें सुनकर तर्पण करने वाले ने उसको गाली दी । नास्तिक नाराज होने लगा कि हमारे माता-पिता को गाली क्यों दे रहे हो ? तर्पण करने वाला बोला कि गाली तुम्हारे माँ बाप तक पहुँच गई क्या ? जब वो पहुँच गई तो यह पानी भी पहुँच जाएगा ।

श्राद्ध और तर्पण से हमारे पितर तृप्त होते हैं । वे खाते नहीं हैं । जब हम पिण्डदान या तर्पण करते हैं तो उन्हें तृप्ति होती है । भगवान् के सामने जब हम नैवेद्य लगाते हैं तो उस नैवेद्य में से भगवान् खाते नहीं हैं । चाहो तो तौल कर देख लो । लेकिन नैवेद्य लगाने से वह प्रसाद हो जाता है और उनके देख लेने मात्र से उस नैवेद्य में अद्भुत स्वाद आ जाता है । हम लोगों के सामने आप फल, फूल और मिठाई लाते हैं तो हम सब कुछ थोड़े ही खाते हैं । खाएँ तो पेट खराब हो जाए लेकिन मन तृप्त हो जाता है कि इसने इतनी सेवा की । देवता भी तृप्त होते हैं । गया में जाकर पिण्डदान करने से पितर तृप्त होते हैं । पण्डे आपको अपने घर में ठहरा भी लेंगे । देवताओं के दर्शन भी करा देंगे । स्नान भी करा देंगे । आपका पैसा यदि खर्च हो जाए तो आपको दे भी देंगे लेकिन आजकल जिनको दर्शनीय स्थल माना जाता है वहाँ गाइड होते हैं । वे अपनी फीस लेकर चले जायेंगे। उनका आपसे कोई सम्बन्ध नहीं होगा । जो लोग ये कहते हैं कि हमारा गया में विश्वास नहीं है वे गलत कहते हैं । तुम माँ बाप की सम्पत्ति लेने में तो विश्वास करते हो । अदालत तक जाते हो कि हमारे बाप दादा की सम्पत्ति हम लेकर ही छोड़ेंगे। फिर पितरों को तर्पण करने से ऐतराज क्यों करते हो? इसलिए कहते हैं कि—

पिण्डं दत्वा धनं हरेत् ।

जो पिण्डदान का अधिकारी है वही धन पाने का भी अधिकारी होता है । व्यास जी ने कहा कि शुकदेव गृहस्थाश्रम में जाए लेकिन शुकदेव जी कहने लगे कि हम गृहस्थी में नहीं जायेंगे । इसमें बन्धन है । मनुष्य को गृहस्थाश्रम बाँध देता है । यह वैराग्य में बाधक है । अभी हम स्वच्छन्द हैं। भवगान् का भजन कर सकते हैं । यदि हम विवाह करेंगे तो स्त्री होगी साथ में । उसके सुन्दर वचनों को सुनकर हमारे मन में इतना मोह हो जाएगा कि

हम उसे छोड़ नहीं पायेंगे । फिर बच्चे होंगे । वे हमारा गला पकड़कर हमसे जब प्यार करेंगे तो हमसे कैसे छोड़ा जाएगा ? ये सब कहकर शुकदेव जी कहने लगे कि हम घर छोड़कर जायेंगे और संन्यास लेंगे । व्यास जी ने कहा कि ऐसा करो कि तुम हमसे देवीभागवत पढ़ लो । शुकदेव जी को व्यास जी ने देवीभागवत पढ़ाई । 18300 श्लोक शुकदेव जी ने सुने । सूत जी जो इसके प्रवक्ता हैं वे भी वहीं थे । उन्होंने कहा कि पिता ने करुणा करके अपने बेटे को पढ़ाया और हम भी वहाँ बैठे-बैठे सुनते रहे । वही कथा वे शौनकादि ऋषियों को सुना रहे हैं । देवीभागवत के सुनने के बाद भी श्रीशुकदेव जी के वैराग्य में कोई कमी नहीं आई । उन्होंने फिर समझाया कि देखो गृहस्थाश्रम मनुष्य के साधना की एक जगह है । इसका उपयोग भोग में नहीं है । बल्कि यह तो अपने मन को संसार से विरक्त करने का एक साधन है ।

एक महात्मा दृष्टान्त देते थे कि एक पण्डित थे । बहुत विद्वान् थे। वे राजकुमार को विद्याध्ययन कराने के लिए जाया करते थे । उसको उन्होंने सकल विद्याओं का उपदेश दिया और विद्या सीख भी गया राजकुमार । जो विद्या वे राजकुमार को पढ़ाते थे लौटकर अपने बेटे को भी पढ़ाते थे कि ये भी पढ़ जाए । रात को अपने पलंग में सुलाते हुए जाड़े में कम्बल ओढ़ाकर वही विद्या अपने बेटे को भी पढ़ा देते थे । दूसरे दिन सुन लेते थे ।

जो अच्छे अध्यापक हैं वे अगले दिन अपने विद्यार्थी से पढ़ाया हुआ सबक पूछ लेते हैं । एकदम से सब नहीं पढ़ाते । एक पण्डित थे । उनके पास कोई पढ़ने गया तो उन्होंने पढ़ाया और दूसरे दिन पढ़ने गया विद्यार्थी तो पूछा कि कल हमने क्या पढ़ाया था ? तो कहने लगा कि पण्डित जी हम तो भूल गए, आप आगे पढ़ाइए तो उन्होंने कहा कि हम उधार नहीं पढ़ाते । नगद पढ़ाते हैं, पहले याद करके आओ तब हम तुमको पढ़ायेंगे । कहते हैं पाँचों पाण्डव अपने गुरु के यहाँ पढ़ते थे । उन्होंने वहाँ ये सुना कि क्रोध नहीं करना चाहिए । सब लोगों ने तो सुन लिया और एक कान से सुनकर दूसरे कान से निकाल दिया । युधिष्ठिर ने सोचा कि पहले यही पक्का करो कि क्रोध नहीं करना चाहिए। पिछला सबक पूछने लगे । सबने सुनाया । जब युधिष्ठिर से पूछा तो युधिष्ठिर चुप रहे । अब गुरुजी नाराज होने लगे । तो

भी युधिष्ठिर कुछ नहीं बोले । बहुत नाराज होने लगे कि कुछ बोलता क्यों नहीं है तो युधिष्ठिर बोले कि हम आपकी विद्या कि "नाराज नहीं होना चाहिए" इसी का अभ्यास कर रहे हैं । ऐसा होता है कि गुरु वे होते हैं जो पिछली बात अच्छी तरह से याद करा देते हैं । आजकल तो ऐसा होता है कि कॉलेज में प्रोफेसर आए और कोर्स पढ़ाकर चले गए । लड़के पढ़ते हैं तो ठीक और नहीं पढ़ते हैं तो भी ठीक । यदि समझ में नहीं आया तो ट्यूशन करो । कहते हैं कि हमको बुलाओ रात को तो हम पैसा लेकर पढ़ा देंगे ।

राजकुमार और ब्राह्मण बालक की पढ़ाई पूरी हुई तो परीक्षा लेने के लिए लोग आए । राजकुमार ने तो तड़ातड़ उत्तर दिया लेकिन ब्राह्मण बालक दरबार का चाकचिक्य देखकर घबड़ा गया । उसने पिता जी की तरफ देखकर कहा कि पिताजी ! कम्बल लाइए । जब हम कम्बल ओढ़ लेंगे तब हमको याद आएगा । इसी तरह से जो व्यक्ति पहले से ही संसार छोड़ देता है वह फिर संसार में आने पर मोहित हो जाता है और जो संसार में रहकर यहाँ के चाकचिक्य देखकर भी अपने अध्यात्म का अभ्यास करता है वह जीवन में सफल हो जाता है ।

यदि किसी से झगड़ा हो जाए तो कहते हैं कि हम बोलेंगे नहीं । अरे बोलचाल बन्द करने से कुछ नहीं होता है । पहले अपनी वाणी को नियन्त्रित करो और बोलना सीखो । जब तक बोलना नहीं सीखोगे मौन होने से काम नहीं चलेगा ।

एक महात्मा थे । बड़ा सुन्दर स्वरूप था उनका । बड़ी-बड़ी जटाएँ थीं । घूमते-घूमते एक गाँव में पहुँचे । गाँव के लोगों ने देखा कि बड़े अच्छे महात्मा हैं । उनकी सेवा करने लगे । वे मौन रहते थे और स्लेट में लिखते थे । लोगों ने कहा कि महाराज ! आप मौन खोल दें तो संसार का कल्याण हो जाएगा । उन्होंने लिखकर दिया कि जब तक यज्ञ नहीं होगा तब तक हम मौन नहीं खोलेंगे । गाँव के लोगों ने चन्दा करके यज्ञ कराया । बड़े-बड़े पण्डित आए, साधु-महात्मा आए । यज्ञ हो गया तो लोगों ने कहा कि महाराज ! अब अपना मौन खोलिए । स्लेट पर लिखा कि एक गौदान और करो । बछड़े वाली गौ बुलाई गई । दान किया गया उसके बाद जब उन्होंने

अपना मौन खोला तो ऐसी कर्कश वाणी निकली कि बात-बात में गाली होती थी । सुनकर लोग दो ही दिन में परेशान हो गए । गाँव वाले बोले कि महात्मा जी ! एक यज्ञ और करा लो पर मौन हो जाओ । बोलने का तरीका मौन रहने से नहीं बनता है । इसके लिए अपने मन को नियन्त्रित करना पड़ता है ।

कहने का अभिप्राय यह है कि गृहस्थाश्रम साधना की जगह है । आप पहले से ही साधु बन गए । साधु बनने के बाद आपके मन में इच्छा हुई कि कुछ अच्छा भोजन मिले । अब वहाँ स्त्री थोड़े ही है जो आपको मन के अनुसार भोजन देगी । जो आपकी भिक्षा में आएगा वही खाना पड़ेगा। एक व्यक्ति था जो अपनी स्त्री को बराबर धमकी देता था कि हम संन्यास ले लेंगे । स्त्री समझाती थी कि आप संन्यास ले लोगे तो हमारा क्या होगा? हमारे बच्चों का क्या होगा ? हमको मत छोड़ो । कुछ दिन और रुक जाओ लेकिन एक दिन वो कहने लगा कि हम तो अब संन्यास ले ही लेंगे । स्त्री कहती है —

जो घर छोड़े घर मिले तो घर छोड़ो कन्त ।
घर छोड़े घर घर फिरो तो न जाइए अन्त ॥

अगर इस घर को छोड़ने से आपको भगवान् का घर मिलता है तो आप चले जाओ और यदि इस घर को छोड़ने के बाद आपको घर-घर घूमना है तो फिर यही घर कौन बुरा है ? यहीं रहो । ये सब व्यास जी ने अपने बेटे को समझाया । बेटे शुकदेव जी ने सोचा कि ये पिता हैं । पिता मोहवश उपदेश कर रहे हैं । जहाँ मोह होता है वहाँ लोग सच्ची बात नहीं बताते । उनके मन में सन्तोष नहीं हुआ । व्यास जी ने कहा कि राजा जनक जी के पास चले जाओ । अब वे ही तुमको ज्ञान का उपदेश देंगे । शुकदेव जी राजा जनक जी के पास गए ।

राजा जनक विदेह कहलाते हैं । क्या कारण है कि वे विदेह कहलाते हैं ? एक बार नारद जी ने सुना कि राजा जनक विदेह कहलाते हैं तो वे परीक्षा लेने गए । वे राजा के यहाँ गए और पूछने लगे कि आपको लोग विदेह क्यों कहते हैं ? उन्होंने कहा कि कुछ दिन आप रहिए तो हम आपको बता देंगे । नारद जी वहाँ रुक गए । एक दिन राजा ने नारद जी से कहा कि

महाराज ! आप बाजार देखकर आइए । बाजार जाते समय उनके हाथ में एक दीपक दे दिया गया और कहा कि ये बुझने न पाए । कुछ लोग नंगी तलवारें लेकर साथ में गए । कहा गया कि यदि दीपक बुझा तो आपका सिर धड़ से अलग कर दिया जाएगा । अब नारद जी दीपक को ही देखते-देखते पूरी बाजार घूम कर आ गए । राजा ने पूछा कि महाराज ! आपने बाजार में क्या देखा ? नारद जी बोले कि अरे भाई ! दीपक छोड़कर और कुछ भी नहीं देखा । बाजार देखकर अपनी गर्दन कटवाते क्या ? इसके बाद उन्होंने छप्पन भोग बनवाए । बनवाकर कहा कि नारद जी को भोजन कराओ । उनको एक चौकी में बिठाल दिया और सामने थाली आ गई । सामने सब व्यञ्जन रखे थे । भोजन की बड़ी अच्छी सुगन्ध आ रही थी । एकाएक उनकी दृष्टि ऊपर गई तो देखा कि एक कच्चे सूत के धागे से एक चट्टान उनकी खोपड़ी के ऊपर लटकी थी । उन्होंने सोचा कि यदि चट्टान टूटी तो खोपड़ी चरमर हो जाएगी । वे उसी को देखते रहे और किसी तरह से समेट कर जल्दी-जल्दी खाया । जनक जी ने पूछा कि महाराज ! क्या-क्या खाया आपने ? बोले कि क्या खाते ? तुमने तो चट्टान सिर के ऊपर ही बाँध रखी थी । जनक जी बोले कि हम इसी तरह से राज्य करते हैं लेकिन हमारा ध्यान परमात्मा में ही रहता है । दूसरी जगह नहीं रहता । जैसे पनिहारिन होती है। आजकल तो नल बन गए । पहले जमाने में लोग कुँए से जल लाते थे । नर्मदा किनारे के लोग नर्मदा के किनारे जाते थे । घड़ा, घड़े के ऊपर घड़ा, फिर उसके ऊपर घड़ा इस तरह से लोग चलते हैं तो बीच में बेटा आ जाता है । बेटे का हाथ पकड़ लिया । बेटा कहता है गोद में बैठेंगे तो वो गोद में भी बैठा लेती है । अपनी सहेली से बात भी करती जाती है लेकिन ध्यान कहाँ है ? घड़े पर । इसी तरह से नटी का दृष्टान्त है —

पुंखानुपुंख विषयेषु जगत् परेषु ।
ब्रह्मावलोकनधियं न जहाति योगी ।
संगीत तालमृतनृत्य वशंगतापि ।
मौलिस्थकुम्भ परिरक्षणधी नटीव ॥

योगी पुंखानुपुंख विषयों में तत्पर रहते हुए भी ब्रह्मदर्शन का त्याग

नहीं करता । जैसे कोई नटी संगीत हो रहा हो, ताल बज रहे हों, नृत्य करते हुए भी माथे पर घड़े को रखे रहती है । जैसे संगीत, ताल और नृत्य के समय भी उसका ध्यान घड़े पर रहता है उसी तरह से परमात्मा में जिसका ध्यान रहता है वह विदेह कहलाता है । चाहे गृहस्थ हो चाहे विरक्त हो ।

ऐसे जनक जी के पास श्रीशुकदेव जी को भेजा गया । शुकदेव जी को पहले पहरेदारों ने नगर में प्रवेश करने से रोका । उन्होंने पूछा कि राजा के पास किसलिए जा रहे हो ? उनसे क्या चाहते हो ? शुकदेव जी ने कहा कि हमको सत्संग करना है तो उन्होंने छोड़ा । राजा के पास गए तो राजा ने कहा कि इनको रनिवास में भेज दो । सुन्दर स्त्रियों के बीच में बढ़ियाँ पलंग दे दिया सोने के लिए । सब सेवा करने लगीं । हाव-भाव और कटाक्ष कर उनके मन को मोहित करने का प्रयत्न करने लगीं लेकिन सिवाय भगवान् का नाम जपने के उन्होंने किसी की ओर नहीं देखा । पहले सन्ध्या की, ध्यान किया फिर विश्राम करने लगे । संसार की तरफ उन्होंने अपना मन नहीं किया। किसी की तरफ जब उन्होंने देखा नहीं तब राजा जनक ने समझा कि ये पात्र हैं । फिर अपने पास बुलाया और उन्हें सत्संग की बातें सुनाईं । जनक जी बोले कि आप डरते क्यों हो ? आप बन्धन से मुक्त होना चाहते हैं लेकिन बन्धन का कारण क्या है ?

मन एव मनुष्याणां कारणं बन्धमोक्षयोः ।
बन्धाय विषयासक्तं मुक्त्यै निर्विषयं मनः ॥

मनुष्यों का मन ही बन्धन और मोक्ष का कारण है । विषयों में आसक्त हो जाना ही बन्धन और विषयों से अनासक्त हो जाना ही मुक्ति है। वास्तव में देखा जाए तो आत्मा में बन्धन है ही नहीं । जो शरीर, इन्द्रिय, मन, बुद्धि, प्राण आदि का साक्षी है, जो प्रकृति के तीनों गुणों को देखने वाला है, जो सबका साक्षी है उस साक्षी में बन्धन नहीं है । वह तो सबका द्रष्टा है । नित्य शुद्ध, बुद्ध, मुक्त स्वभाव वाला है । तुममें बन्धन है ही नहीं। इस तरह से उन्होंने बताया कि —

नैव किञ्चित् करोतीति युक्तो मन्येत तत्त्ववित् ।
पश्यन् शृण्वन् गृहन् जिघ्रन् श्वपन् श्वसन् ।

इन्द्रियाणीन्द्रियार्थेषु वर्तन्त इति धारयन् ।

जो युक्त है, तत्त्ववेत्ता है वह खाता हुआ, पीता हुआ, बोलता हुआ, सब कुछ करता हुआ भी कुछ नहीं करता । यह समझता है कि इन्द्रियाँ इन्द्रियों के विषयों में जा रही हैं मेरा इससे कोई सम्बन्ध नहीं है । इस प्रकार का तत्त्वज्ञान श्रीशुकदेव जी को दिया गया तो उनके मन में से मोह दूर हुआ। वे लौटकर अपने पिता के पास गए और उन्होंने कहा कि ठीक है, गृहस्थाश्रम स्वीकार करते हैं । उन्होंने गृहस्थाश्रम स्वीकार किया । उनकी सन्तानें उत्पन्न हुईं । गृहस्थाश्रम के कर्त्तव्यों को पूरा करके वानप्रस्थ आश्रम में गए और फिर संन्यास लिया । अन्त में नारद जी के उपदेश से तत्त्वज्ञान प्राप्त कर सब ओर से असंग होकर वहाँ से अन्तरिक्ष में चले गए । सबका त्याग कर दिया । व्यास जी उनके वियोग में दुःखी हुए । उन्होंने उनकी ओर देखा नहीं। हा पुत्र! हा पुत्र ! कहने लगे । पहाड़ों से ध्वनि आई कि जो अज्ञानी है वही पुत्र होता है । तुम ही अज्ञानी हो । इस तरह से श्रीशुकदेव जी की कथा देवीभागवत में आती है ।

श्रीमद्भागवत के अनुसार, उपनिषदों के अनुसार बात कुछ दूसरी है। वहाँ तो यह आता है कि श्रीशुकदेव जी जब माता के गर्भ में आए तो सोलह वर्ष तक गर्भ से निकले ही नहीं । व्यास जी ने कहा कि अरे बालक! तू गर्भ से निकलता क्यों नहीं ? बोले गर्भावस्था में ज्ञान रहता है । बाहर निकलूँगा तो मोह माया में पड़ जाऊँगा । फिर बोले कि यदि शङ्कर जी हमको उपदेश करें तो हम निकल सकते हैं तो भगवान् शङ्कर से प्रार्थना की गई । जैसे ही बालक बाहर निकला शङ्कर जी ने उनको उपदेश दिया । उपदेश देते ही वे विरक्त होकर चले गए । व्यास जी उनके पीछे-पीछे गए लेकिन उन्होंने लौटकर नहीं देखा ।

उन शुकदेव जी की कथा दूसरी है । ये गर्भवास में नहीं थे । ये अरणिमन्थन से उत्पन्न हुए हैं । दोनों कथा अलग-अलग है । कल्प भेद के कारण कथाएँ अलग अलग हैं —

कलप भेद हरिचरित सुहाए ।

इसलिए इसमें मोह नहीं करना चाहिए । श्रीमद्देवीभागवत के श्रवण

से अन्त में तत्त्वज्ञान होता है और तत्त्वज्ञान से ही मुक्ति होती है । अब कथा यहाँ पर पूर्ण करते हैं । थोड़ा सा भगवान् का नाम लीजिए ।

श्री राम जय राम जय जय राम
प्यारे जरा तो मन में विचारो क्या साथ लाए अरु ले चलोगे
जाता सदा साथ यही पुकारो गोविन्द दामोदर माधवेति
गोविन्द दामोदर माधवेति हे कृष्ण हे यादव हे सखेति
श्रीकृष्ण गोविन्द हरे मुरारे हे नाथ नारायण वासुदेव
श्रीकृष्ण गोविन्द हरे मुरारे हे नाथ नारायण वासुदेव
धर्म की जय हो । अधर्म का नाश हो ।
प्राणियों में सद्भावना हो । विश्व का कल्याण हो ।
गोमाता की जय हो । गोहत्या बन्द हो ।
हर हर महादेव ।

तृतीय दिवस

तत्त्वज्ञान प्राप्त कर मनुष्य मोक्ष प्राप्त कर सकता है

समुपस्थित विद्वद्वृन्द ! देवियो ! सज्जनो !

कल आप श्रीशुकदेव जी और जनक जी का संवाद सुन रहे थे । श्रीशुकदेव जी अरणिमन्थन से प्रकट हुए ऐसी कथा आती है । अरणिमन्थन से उत्पन्न श्रीशुकदेव जी को व्यास जी अपना पुत्र मानते हैं और पुत्र के मोह से ग्रस्त होकर यह चाहते हैं कि हमारा पुत्र गृहस्थ आश्रम में जाए और हमें पुत्र सुख प्रदान करे और ये जो पुत्र है शुकदेव, ये विरक्त है । संसार में नहीं आना चाहते । विरक्त होकर संन्यासी बनकर वन में जाना चाहते हैं । बहुत अधिक आग्रह करके व्यास जी ने शुकदेव जी को देवीभागवत पढ़ाई। देवीभागवत पढ़ने के पश्चात् भी उन्हें सन्तोष नहीं हुआ और वे गृहस्थाश्रम में जाने के लिए राजी नहीं हुए । तो उनको ज्ञान देने के लिए व्यास जी ने राजा जनक के पास भेजा । राजा जनक ने पहले उनकी परीक्षा ली । इसको दृढ़ वैराग्य है या नहीं यह देखने के लिए उन्हें सुन्दर रनिवास में रखा । सुन्दर कोमल शय्या उनको विश्राम करने के लिए प्रदान करवाई । नारियों ने हाव-भाव और कटाक्ष से उनको मोहित करना चाहा किन्तु वे परम एकाग्र अन्तर्मुख ही बने रहे तो राजा जनक ने उनसे बुलाकर वार्तालाप किया और उनसे पूछा कि आप यहाँ कैसे आए ? शुकदेव जी ने कहा कि हम यहाँ पर आए हैं आपसे विचार विमर्श करने के लिए । हमारे पिता चाहते हैं कि हम गृहस्थाश्रम में जाएँ पर हमें अच्छा नहीं लगता है तो उन्होंने हमको आपके पास भेजा है तो आप हमें ये बतलाइये कि हमारा क्या कर्त्तव्य है ? उन्होंने कहा कि गृहस्थाश्रम में दोष क्या है आप ये बताइए ।

श्रीशुकदेव जी ने कहा कि गृहस्थाश्रम कर्मप्रधान है । जहाँ कर्म

करोगे, कर्मों का फल भोगने के लिए जन्म लेना पड़ेगा । कर्म से जन्म और जन्म से पुनः कर्म । फिर जन्म, फिर कर्म । जन्म-कर्म के चक्र में पड़ना गृहस्थाश्रम में होता है और गृहस्थाश्रम में कोई सुख-शान्ति भी नहीं है । आप राजा हैं । आपको राज्य का सुख तभी मिल सकता है जब आपके मन्त्री आपके अनुकूल हों । आपके पास कोष हो । आपके पास सेना हो । आपका कोई प्रबल शत्रु न हो । आपके अन्तःपुर में जो रानियाँ हैं वो आपके अनुकूल हों । आपके कुटुम्बी सब अनुकूल हो तब तो आपको सुख मिलेगा। इनमें से यदि कोई भी वस्तु प्रतिकूल हो गई तो आपका राज्यसुख रहेगा नहीं। तो ये जो राज्य सुख है ये साधनसापेक्ष्य है । साधनसापेक्ष्य जो सुख होता है वह वस्तुतः सुख नहीं है, दुःख ही है ।

वास्तव में हमको सुख लोक में तब अनुभूत होता है जब हमारी इन्द्रियों के साथ अनुकूल विषय का सम्पर्क होता है । जो वस्तु हम चाहते हैं चाहे वह शब्द हो, स्पर्श हो, रूप हो, रस हो, गन्ध हो तो इनके दो रूप है। एक अनुकूल और दूसरा प्रतिकूल । प्रतिकूल शब्द से दुःख होता है, अनुकूल शब्द सुनने से सुख होता है । स्पर्श प्रतिकूल हो तो दुःख होता है, अनुकूल हो तो सुख होता है । रूप भी अनुकूल हो तो सुख मिलता है और प्रतिकूल हो तो दुःख मिलता है । रस भी भोजन यदि स्वादिष्ट है तो सुख मिलता है यदि उसमें कोई गड़बड़ी हो जाए नमक ज्यादा कम हो जाए, मिर्च मसाला ज्यादा हो जाए या न हो तो दुःख होता है और अपने अनुकूल हो तो सुख होता है और इसी तरह से गन्ध भी । सुगन्ध से सुख होता है और दुर्गन्ध से दुःख होता है । ये दोनों चीजों में से एक अनुकूल विषय जब मिलता है और इन्द्रियों के साथ उनका संयोग होता है तो सुख मिलता है । उसमें भी हमारा मन यदि स्वच्छ है, प्रसन्न है तो अनुकूल विषय के प्राप्त होने पर हम सुखी हो सकते हैं । अब आप सोच लीजिए कि आपके मन में इच्छा हुई कि हम खीर खाएँ और बड़े प्रेम से आपकी पत्नी से खीर बनाई। उसमें मेवा डाला, बड़ा सुगन्धित स्वरूप बना । थाली सामने आई । आपने जैसे ही उसको खाने का मन किया वैसे ही खबर आई कि आपका कोई प्रिय व्यक्ति मर गया है या जो मुकदमा चल रहा था वो आप हार गए और यदि आप मिनिस्टर हैं

तो वहाँ से आपका इस्तीफा माँग लिया गया । तो खीर अच्छी लगेगी क्या? तो मन की भी प्रसन्नता चाहिए । मन प्रसन्न हो और अनुकूल विषय की प्राप्ति हो और सदा मिलता रहे । अब फिर ये भी बात है कि एक ही विषय कभी सुख देता है और कभी दुःख देता है । जैसे खीर का ही उदाहरण ले लें । आपने खीर बनवाई । सामने थाली आई । पत्नी ने परोस दिया । आपने बड़े अच्छे से खाया । जब आप तृप्त हो गए तो वो एक कटोरी और ले आई । इतना और खा लो । आपने वो भी खा लिया। फिर एक कटोरी और ले आई कि ये भी खा लो । फिर एक कटोरी? तो आपको गुस्सा आने लगा उस खीर को देखते ही । कहने लगे मार ही डालेगी क्या ? तो वो आपके अनुकूल जब तक रही तब तक तो अच्छी लगी और जहाँ देखा कि हमारे लिए घातक सिद्ध हो रही है तो फिर अच्छी नहीं लगती है । तो ये जो सुख है यह साधनसापेक्ष्य है ।

एक सुख है जो साधनसापेक्ष्य नहीं है । वो क्या है ? ब्रह्मानन्द । ब्रह्म का जो आनन्द है वो साधनसापेक्ष्य नहीं है । ये माना जाता है कि ब्रह्म भी जब तक परोक्ष रहता है तब तक उसके लिए भी साधन की अपेक्षा होती है कि भगवान् की भक्ति करो, भजन करो तब सुख मिलेगा । पर जब ब्रह्म का ज्ञान हो जाता है और ये समझ में आ जाता है कि वह हमारी आत्मा से सर्वथा अभिन्न है प्रत्यक् चैतन्यरूप है और ये निश्चय है कि मनुष्य का जहाँ प्रेम होता है । प्रिय वस्तु के सम्पर्क से ही सुख मिलता है । कोई भी व्यक्ति हो चाहे पदार्थ हो उसके मिलने से ही आपको सुख होगा । तो प्रिय क्या है और अप्रिय क्या है ? इस पर यदि आप विचार करें तो प्रिय वह है जो हमारा है । जिसमें हमारी ममता है वह हमें प्रिय होता है । आप समझ लीजिए कि एक नोट आपके पाकेट में है । जब तक ये दूसरे के पाकेट में था तब तक आपका उससे प्रेम नहीं था पर जब वह आपके पाकेट में आया तब आप कहते हैं कि ये हमारा है । तब आपका उससे प्रेम हुआ ।

एक बैंक के मैनेजर के यहाँ हम ठहरे थे । वो ऊपर रहता था और बैंक नीचे था । रोज घूमने जाते थे । एक दिन घूमकर लौटे तो उसने पूछा कि महाराज ! आप बैंक देखोगे ? हमने कहा कि भाई तुम्हारी इच्छा है तो

देख लेंगे । तो वो बैंक ले गया और उसने आलमारी खोली तो लाखों करोड़ों नोट रखे हुए थे । मैनेजर बोला कि महाराज ! ये सब मेरी ताली में है । मेरे हाथ में इतना रूपया है । हमने पूछा इसमें से पाँच रूपया निकाल सकते हो? तो बोला हथकड़ी लग जाएगी । तो हमने कहा कि इसमें तुम्हारा क्या है ? जब तक ये तुम्हारा न् हो जाए तब तक ये तुम्हारे सुख का साधन नहीं हो सकता । जो वस्तु ममतास्पद होती है जिसमें हमारा मेरापन होता है उसको देखने से, उसको प्राप्त करने से सुख होता है । मेरा जो होता है वह मैं के सम्बन्ध से होता है और जो मैं है उसी का नाम आत्मा है । आत्मा से सम्बन्धित को ही आत्मीय कहते हैं । जिसके सम्बन्ध से आत्मीय प्रिय हो जाता है उसमें हमारा स्वाभाविक प्रेम है ।

उदाहरण के लिए समझ लीजिए कि मोतीचूर का लड्डू है । चने के चूर्ण से मोतीचूर का लड्डू बनता है । उस चने के चूर्ण में शक्कर मिला दी जाती है । उसको भूँज कर घी में शक्कर डाल दी जाती है तो वो जो सूखा चने का चूर्ण है वो भी मीठा हो जाता है । चने के चूर्ण में जो मिठास है वो शक्कर के सम्बन्ध से है । शक्कर में स्वयं मिठास है । इसी तरह से आत्मा में स्वतः प्रियता है । आत्मा के सम्बन्ध से स्वतः प्रियता है । उस आत्मा में जब हमारा स्वाभाविक प्रेम है तो उस प्रेम से उस प्रिय वस्तु से प्राप्त आनन्द भी स्वाभाविक है । इसीलिए उपनिषदों में आया है कि मैत्रेयी ने याज्ञवल्क्य से कहा कि —

न वा अरे पत्युः कामनया पतिः प्रियो भवति आत्मनस्तु कामाय पतिः प्रियो भवति ।

हे मैत्रेयी ! पति के लिए पति प्यारा नहीं होता । आत्मा के लिए पति प्यारा होता है ।

न वा अरे जाया कामाय जाया प्रिया भवति । आत्मनस्तु कामाय जाया प्रिया भवति ।

जाया के लिए जाया प्यारी नहीं होती । आत्मा के लिए जाया प्यारी होती है ।

न वा अरे पुत्रस्य कामाय पुत्रः प्रियो भवति । आत्मनस्तु

कामाय पुत्रः प्रियो भवति ।

पुत्र के लिए पुत्र प्यारा नहीं होता । आत्मा के लिए पुत्र प्यारा होता है ।

स्वाभाविक बात है । जब तक किसी के बेटा नहीं होता तब तक लोग पुत्र के लिए पूजा-पाठ करते हैं । देवी-देवताओं की मनौती मनाते हैं और डाक्टरों, वैद्यों के पास जाते हैं कि किसी तरह से बेटा हो जाए । जब बेटा हो जाता है तो सोचते हैं कि बेटा बड़ा हो जाए, पढ़-लिख ले । जब पढ़-लिख लेता है तो सोचते हैं कि शादी कर दें और शादी कर दिया, घर में बहू आ गई । बहुत धूम-धाम से शादी होती है । खूब बाजे बजते हैं । सब नातेदार रिश्तेदार बुलाये जाते हैं । बहू आती है सज-धजकर तो सब देवी-देवताओं को प्रणाम करवाते हैं, बड़े लोगों को प्रणाम करवाते हैं । सब लोग वाह-वाह करके चले जाते हैं । सासू जी कहती हैं कि बहूरानी तुम तो बैठी रहो । हम घर का सब काम सम्भाल रहे हैं । तुम कोई चिन्ता मत करो। बहूरानी सोचती है कि बहुत अच्छा है । अच्छी सास मिली है । कुछ दिनों के बाद सासू कहती है कि बहूरानी ! इस घर को हमने बहुत सम्भाला, अब तू सम्भाल । रसोई देख, चौका देख, घर का काम धाम देख । वो कहती है अच्छी बात है । काम देखने लगती है । अब सास बहू का काम देखती है तो उसमें कुछ न्यूनता रह जाती है तो सास फटकारती है । कुछ दिन बहू सास की बात सुनती है तब तक जब तक कि पति अपने वश में न हो जाए। और जैसे ही पति वश में हुआ तो सास को फटकारने लगती है । अब सास अपने पति से कहती है बहू के ससुर से कि ये बहू क्या है मिर्चा है । इसकी वाणी ऐसी कर्कश है कि दिल दुःख जाता है । तब ससुर समझाता है कि देखो पराए घर की लड़की है । ठीक हो जाएगी, चिन्ता मत करो और प्रेम से रखो । खूब समझाता है, लेकिन बार-बार अपनी स्त्री के कहने से जो पिता है वो पुत्र को बुलाकर कहता है कि बेटा ! तू अपनी बहू को सम्भाल। वो तेरी माँ का अपमान करती है । तो बेटा कहता है कि आप भी अपनी पत्नी को सम्भालिए। माँ को आप भी सम्भालिए । अब दोनों में मतभेद हो जाता है । फिर एक दिन पिता पुत्र को बुलाकर कह देता है कि तुम अपनी बहू को लेकर

अलग हो जाओ । ऐसा होता है कि नहीं ? बहू को क्यों लाए थे ? बेटा को क्यों पैदा किया था ? अपने सुख के लिए । इसलिए कि ये हमें सुख देगा। जब वो सुख की जगह दुःख देने लगता है तो हमारा उससे प्रेम नहीं रहता ।

आत्मनस्तु कामाय पुत्रः प्रियो भवति ।

आत्मा के लिए पुत्र प्यारा होता है, पुत्र के लिए पुत्र प्यारा नहीं होता। उस आत्मा का ज्ञान जिसको हो गया । उस परमप्रेमास्पद आत्मा का ज्ञान प्राप्त कर लेने से फिर किसी और सुख की आवश्यकता नहीं रहती । एकाग्रचित्त से बिना साधन का ये सुख है । बिना साधन के ये सुख मिलता है । इसका उदाहरण मिल जाता है गाढ़ी नींद में । जब आप गाढ़ी नींद में सो जाते हैं तो वहाँ न शब्द है, न स्पर्श है, न रूप है, न रस है, न गन्ध है। कुछ भी नहीं है लेकिन आप बड़े आराम से सोते हैं । इसके लिए आप सब कुछ छोड़ देते हैं । बहुत से लोग बड़े-बड़े आयोजन करते हैं संगीत के। हॉल बुक किया, भारत के बड़े-बड़े संगीतज्ञ बुलाए, गायक बुलाए, बजाने वाले बुलाए और सभा जुटी । उसके बाद एक से एक संगीतकार अपना संगीत सुनाने लगे । सुनते-सुनते फिर आलस्य आने लगता है । फिर जम्हाई लेने लगता है । फिर घड़ी देखने लगता है । कहता है कि अब तो सोयेंगे। सब कुछ छोड़कर घर जाता है और अपने बिस्तर पर लेटता है और अगर स्त्री आकर कुछ बात करने लगती है तो उससे भी मुँह फेर लेता है । सो जाता है । वहाँ कौन है जो उसे सुख पहुँचा रहा है ? उठने पर कहता है कि आज मैं इतने सुख से सोया कि कुछ पता ही न रहा । ये जो सुख है बिना साधन का सुख है । अन्तर इतना है कि उस समय अज्ञान होता है । अज्ञान ये रहा कि मुझे कुछ पता न रहा ये सुख सहज सुख है । उस अज्ञान का निवारण कर दिया जाए तो फिर किसी वस्तु की आवश्यकता नहीं है । इसीलिए श्रीमद्भागवत और दूसरे ग्रन्थों में आया है कि कहीं भी सुख नहीं है । कहते हैं —

न चेन्द्रस्य सुखं किञ्चिन्न सुखं चक्रवर्तिनः ।
सुखमस्ति विरक्तस्य मुनेरेकान्तजीविनः ॥

अर्थात् इन्द्र को वह सुख नहीं है, चक्रवर्ती सम्राट् को वह सुख नहीं

है । सुख यदि है तो एकान्तजीवी विरक्त को है ।

श्रीशुकदेव जी ने कहा कि मैं वह सुख चाहता हूँ राजन् ! पिताजी कहते हैं गृहस्थाश्रम में जाओ तो मैं आपसे पूछने आया हूँ । शुकदेव जी बोले कि आप अपने आपको सुखी मानते होंगे लेकिन आप भी सुखी नहीं हैं । आपके पिता निमि थे । निमि ने यज्ञ करने का निश्चय किया तो उस यज्ञ में सब संभार एकत्र कर दिया । वशिष्ठ जी को बुलाया कि हमारा यज्ञ सम्पन्न कराइए । वशिष्ठ जी ने कहा कि इस समय तो हम खाली नहीं है। हमने दूसरी जगह अपना समय दे रखा है । या तो आप यज्ञ का समय बदल लीजिए या किसी दूसरे से करवा लीजिए । निमि बोले आप हमारे पुरोहित होकर हमारी बात नहीं मानते । फिर दोनों एक-दूसरे को शाप दे देते हैं कि आप मर जाएँ । फिर अन्त में भगवती की कृपा होती है तो निमि फिर जीवित होता है और निमेष में आकर निवास करता है । हमारी आँखों में जो पलक झुकती है उसी में निमि का निवास है । निमि के कारण ही पलक झुकती है। वहाँ भी दुःख है । आप भी दुःखी हैं । इस पर राजा जनक ने कहा कि महाराज् ! ये बात सही है कि दुःख है लेकिन जब तक हम इसमें अहंता ममता रखते हैं तब तक हम इससे दुःखी हो सकते हैं । अगर हम इससे अहंता ममता का त्याग कर दें तो राज्य में रहते हुए भी हम सुखी हो सकते हैं । इसीलिए श्रीमद्भगवद्गीता में आता है —

कर्मणैव हि संसिद्धिमास्थिता जनकादयः ।

कर्म में रहते हुए भी राजा जनक को सिद्धि प्राप्त हो गई । संसार में रहते हुए भी कोई संसार से अनासक्त हो जाए तो उसको संसार का दुःख नहीं होता । इसलिए महात्मा लोग कहते हैं कि भाई कितना ही गहरा पानी हो नाव उसमें तैरती रहेगी, डूबेगी नहीं । बस शर्त यह है कि नाव में पानी न हो । अगर नाव में पानी आएगा तो नाव डूब जाएगी । संसार में आप रहिए लेकिन अहंता ममता से रहित होकर रहिए । ये शरीर मैं हूँ, इसके सम्बन्धी मेरे हैं। इस तरह की भावना आप रखते हैं तो आपके भीतर संसार आ गया और अगर आप ये नहीं लाते तो आपके भीतर संसार नहीं है । आप संसार में तैरते रहिए । आवश्यकता है कि किसी से ममता का सम्बन्ध न हो । जनक जी

के जीवन में ऐसा आया भी है । एक बार कोई महात्मा आए । सत्संग होने लगा । सत्संग भी अद्भुत होता है । आपने सुना होगा श्रीरामचरितमानस में—

तात स्वर्ग अपवर्ग सुख धरिय तुला इक अंग ।
तूल न ताहि सकल मिलि जो सुख लव सतसंग ॥

स्वर्ग अपवर्ग का सुख तराजू के एक पलड़े में रखा जाए और एक पलड़े में क्षणमात्र का सत्संग रखा जाए तो उस क्षणमात्र के सत्संग की बराबरी स्वर्ग का सुखं भी नहीं कर सकता ।

एक बार विश्वामित्र जी और वशिष्ठ जी में इस बात का विवाद हो गया । विश्वामित्र बोले कि तप बड़ा और वशिष्ठ जी बोले कि सत्संग बड़ा। उन्होंने कहा कि अब इसमें निश्चय कौन करे ? तो दोनों शेषनाग के पास गए। शेषनाग से कहा कि हमारे दोनों के बीच में आप न्याय कर दीजिए । विश्वामित्र जी कहते हैं कि तप बड़ा और हम कहते हैं कि सत्संग बड़ा । आप ही बताइए । तो शेष जी ने कहा कि हमारे माथे में धरती है । बहुत ज्यादा इसका वजन है । सोचने की शक्ति नहीं है । आप थोड़ी देर के लिए इसको धारण कर लीजिए । पूरी तपस्या की शक्ति विश्वामित्र जी ने लगा दी धरती एक इंच भी नहीं उठी और लव मात्र के सत्संग का सुख वशिष्ठ जी ने लगाया तो धरती ऊपर उठ गयी । दोनों बोले निर्णय बताइए तो शेषनाग जी ने कहा कि अब बताएँ क्या ? यह तो निश्चय हो गया कि कौन बड़ा? तो यह जो सत्संग है वह बहुत सुख की वस्तु है । सारे सुख इसके सामने कुछ नहीं है । कभी-कभी मूर्ख लोग इससे वञ्चित हो जाते हैं ।

एक सेठ था वह सत्संग में बैठा था । उसे बड़ा आनन्द आ रहा था। इतने में मुनीम आ गया । कान में बोला कि इस समय चाँदी सस्ती है । अगर आप खरीद लें तो काफी नफा हो जाएगा । सुनते ही उसका मन सत्संग में नहीं लगा । वह वहाँ से उठा और बाजार में जाकर चाँदी बहुत सी खरीद ली लेकिन संयोग की बात है कि चाँदी और सस्ती हो गई । तो जो खरीदा वो नुकसान हो गया । जो कुछ उसने पैसा खर्च किया था वह निकल गया। तो सत्संग को छोड़कर जाने से कभी-कभी ऐसा भी हो जाता है । कहने का

मतलब यह है कि सत्संग में महात्मा लोग आए थे । बड़े-बड़े ज्ञानी महात्मा और संन्यासी लोग आए थे । जनक जी भी उस सत्संग में पहुँचते थे । रोज वेदान्त का पाठ होता था । एक दिन क्या हुआ कि महात्मा आकर बैठ गए। जो महात्मा सत्संग कराते थे वे भी आकर बैठ गए । जनक जी के आने में थोड़ी देर हुई तो महात्माओं ने कहा कि आप सत्संग प्रारम्भ करिए तो उन्होंने कहा कि जनक नहीं आया । यह सुनकर वहाँ वेदान्त सुनने बैठे महात्माओं के मन में सन्देह हुआ कि हमारे गुरुजी के मन में लोभ आ गया है । राजा की प्रतीक्षा कर रहे हैं । शायद इनके मन में लोभ आ गया कि कुछ धन मिल जाएगा तो अपनी कुटिया बनवा लेंगे आदि-आदि । गुरुजी उन लोगों के मन को जान गए । इतने में राजा जनक आ गए । दूसरे दिन गुरुजी ने माया रची। इस माया में यह हुआ कि एक ने आकर जनक जी से कहा कि शत्रुओं ने आकर नगर घेर लिया है । जनक जी ने कहा कि हम सत्संग के बाद बात करेंगे । अभी जाओ । थोड़ी देर में दूसरा आया और कहा कि अब शत्रुओं से लड़ाई हो रही है और लड़ाई में शत्रुओं की सेना जीत गई और नगर में प्रवेश कर गई । जनक जी ने कहा ठहरो । फिर कोई आया और कहा कि अब नगर में आग लगा दी । मिथिला जल रही है । जनक जी ने कहा —

मिथिलायां विदग्धायां न मे दाहः कदाचन ।

मिथिला के जल जाने पर भी मेरा कुछ भी नहीं जला है । अब वो आग यहाँ तक आई तो महात्माओं को लगा कि कहीं हमारी कुटिया में आग न लग जाए, कहीं हमारा कमण्डलु न जल जाए, हमारे कपड़े, लंगोटी न जल जाए तो सब उठकर बचाने के लिए भागने लगे । अब महात्मा जी ने जो माया रची थी वह शान्त हो गई । महात्मा जी ने कहा कि देखो ! तुम्हारे पास कुछ भी नहीं है लेकिन तुम दौड़ पड़े और उसने इतना बड़ा राज्य होने पर भी सत्संग नहीं छोड़ा इसलिए यह समझ लो कि ये पात्र है और तुम सब कुपात्र हो । तुममें वो बात नहीं । बिना वैराग्य के संन्यास का कोई अर्थ नहीं है ।

योगवाशिष्ठ में एक चूड़ारा का उपाख्यान आता है । शिखरध्वज नाम के एक राजा थे । चूड़ारा उनकी रानी थी । बहुत ही सुन्दरी थी, रूपवती

थी, गुणवती थी । राजा उसमें बहुत आसक्त था और चूड़ारा ज्ञानी थी, योगिनी थी । वह चाहती थी कि हमारे पति को कुछ ज्ञान हो जाए, वैराग्य हो जाए । उसने अपने मन्त्री और पास में बैठने वाले जो लोग थे उनको समझाया कि इनके सामने वैराग्य की बात करो । संसार की निःसारता की बात करो । सब करने लगे । सुनते-सुनते राजा को परम वैराग्य हो गया। वह राज्य छोड़कर निकल पड़ा और उसने चूड़ारा से भी नहीं पूछा । घोर जंगल में जाकर पर्णकुटी बनाकर वहीं पर तपस्या करने लगा । चूड़ारा ने देखा कि इसको वैराग्य हो गया तो वह तो योगिनी थी । आकाश मार्ग से जंगल पहुँची और उसने वहाँ देखा कि राजा बैठा है । कन्दमूल फल खाता है और निरन्तर तपस्या कर रहा है तो उसने एक ब्रह्मचारी का रूप बनाया। ब्रह्मचारी बनकर उसके पास गई । उन्होंने ब्रह्मचारी का स्वागत किया फिर सत्संग होने लगा। राजा से पूछा कि आप यहाँ कैसे आए तो राजा ने बताया कि हमने राज्य का त्याग कर दिया । राज्य में हमारी ममता थी, बन्धन था। अब हम बन्धन से मुक्त हो गए । ब्रह्मचारी ने कहा कि अभी तुम बन्धन से मुक्त नहीं हुए हो । जैसे महल में तुम्हारा अनुराग था वैसे ही अब इस पर्णकुटी में तुम्हारा अनुराग है । जैसे तुम्हारा उस समय वस्त्राभूषण और अलंकार में राग था वैसे ही अब अपने दण्ड, कमण्डलु और मृगचर्म में अनुराग है । ऐसी स्थिति में विषय बदल गए पर आपकी अहंता ममता तो नहीं बदली । अहंता ममता कैसे बदलेगी पूछा तो ब्रह्मचारी वेशधारी चूड़ारा ने उसको ज्ञान का उपदेश दिया। उस ज्ञान के उपदेश से वह मुक्त हो गया। अब उसने कहा कि अब चाहे तुम राज्य में जाओ चाहे वन में रहो दोनों में सम रहोगे ।

इसी तरह से जो व्यक्ति ज्ञानी हो जाता है उसके लिए सब कुछ बराबर हो जाता है । उसके लिए न तो कर्म से ही कोई प्रयोजन है और न कर्म के त्याग से प्रयोजन है । भगवान् श्रीकृष्ण ने गीता में कहा है —

कर्मण्यकर्म यो पश्येत् अकर्मणि च कर्म यः ।
स बुद्धिमान् मनुष्येषु स युक्तः सर्व कर्मकृत् ॥

अर्थात् जो कर्म में अकर्म को देखता है और अकर्म में कर्म को देखता है वह मनुष्यों में बुद्धिमान् हैं, युक्तियुक्त है और समस्त कर्मों को करने

वाला या समस्त कर्मों को काटने वाला हो जाता है ।

अब कर्म में अकर्म कैसे देखा जाए ? कर्म में अकर्म ऐसे देखना है कि शरीर, इन्द्रिय, मन, बुद्धि से जो भी चेष्टाएँ हो रही हैं उन चेष्टाओं का मैं साक्षी हूँ । मैं कर्म नहीं कर रहा हूँ ऐसा विचार करना है ।

गुणाः गुणेषु वर्तन्ते ।

गुण गुणों में बरत रहे हैं, इन्द्रियाँ इन्द्रियों के अर्थ में जा रही हैं । इन्द्रियाँ भी सत्त्वगुण, रजोगुण और तमोगुण का कार्य है और विषय भी सत्त्वगुण, रजोगुण और तमोगुण का कार्य है । ये आपस में जा रहे हैं, मेरा इससे कोई सम्बन्ध नहीं है । ऐसा जो जानता है वह कर्म में अकर्म देखता है और जो अपने आपको कर्त्ता मानता है और सोचता है कि हम कर्म न करें तो कर्म न करना भी कर्म ही हो जाता है । जैसे हाथ खोलना कर्म है वैसे मुट्ठी बाँधना भी कर्म है । आँख खोलना जैसे कर्म है वैसे ही आँख मूँदना भी कर्म है । आप कहते हैं कि आप कर्म नहीं करेंगे और आप बैठ गए । आप घर में बैठे हैं और उसी समय घर में कोई अतिथि आ गया । आपके गुरु आ गए। आपने कहा हम कर्म नहीं करेंगे और बैठे रह गए । आपने उनका स्वागत नहीं किया । ये विकर्म हो गया । कर्म से छुटकारा नहीं मिल सकता। जब तक आपकी आत्मा में कर्त्तृत्त्व, भोक्तृत्त्व की भ्रान्ति है तब तक कर्म से छुटकारा नहीं हो सकता । यह भ्रान्ति अज्ञानकृत है । स्वाभाविक नहीं है । स्वाभाविक तो हमारा नित्य, शुद्ध, बुद्ध, मुक्त आत्मा है ।

आप देखिए इसमें कर्ण का उदाहरण आता है । इसमे कथा आती है और श्रीमद्भागवत में भी कथा आई है कि कुन्ती शूरसेन की कन्या थी। कुन्तिभोज ने अपनी पुत्री के रूप में इसको माँग लिया । कुन्तिभोज राजा के यहाँ कुन्ती रहने लगी। वहाँ क्या हुआ कि एक बार दुर्वासा मुनि आए। दुर्वासा मुनि की इस बालिका ने खूब सेवा की । चातुर्मास्य में वे रहे और कुन्ती बराबर उनकी सेवा में लगी रही । कुन्ती की सेवा से प्रसन्न होकर दुर्वासा मुनि ने उनको एक मन्त्र दिया और कहा कि इस मन्त्र से तुम जिस देवता को बुलाओगी वे आयेंगे और तुम्हारा मनोरथ पूर्ण करेंगे । दुर्वासा जी तो वरदान देकर चले गए । कुन्ती ने सोचा कि गुरुजी ने जो मन्त्र दिया है

उसका हम प्रयोग करके देख लें कि यह मन्त्र सच्चा है कि झूठा है । जैसे ही सूर्योदय हुआ कुन्ती ने मन्त्र से सूर्यनारायण का आह्वाहन कर दिया । सुन्दर रूप धारण करके सूर्य भगवान् आ गए और पूछने लगे कि हमको क्यों बुलाया ? कुन्ती बोली कि मैंने तो मन्त्र की परीक्षा लेने के लिए बुलाया था। सूर्य ने कहा कि देवताओं का दर्शन अमोघ होता है । वे कुछ देकर ही जाते हैं । हम तुमको एक पुत्र देकर जाएँगे । कुन्ती ने कहा कि महाराज ! हम कन्या हैं । ऐसी स्थिति में आप कैसे अनर्थ की बात कर रहे हैं ? हम आपसे प्रार्थना करते हैं कि आप लौट जाइए । सूर्य बोले कि अगर तुम हमें पुत्र देने नहीं दोगी तो हम तुम्हें भी शाप दे देंगे और दुर्वासा मुनि को भी शाप दे देंगे। कुन्ती मान गई । सूर्य ने गर्भाधान किया । बोली कि महाराज ! हम कन्या हैं । अब क्या होगा ? सूर्य बोले कि तुम अक्षतयोनि रहोगी । तुम्हारा कन्यात्त्व अव्याहत होगा । कुन्ती के पेट में बच्चा आ गया । माता-पिता को कुन्ती ने कुछ बताया नहीं । उसकी एक सेविका थी जो सब जानती थी । कुछ काल में बालक का जन्म हुआ । कवच, कुण्डल उसके शरीर में लगा हुआ था । बड़ा सुन्दर बालक था । कुन्ती के मन में उस बालक को देखकर ममता हो गई । क्या करें ? लेकिन लोक-लज्जा से वह कह नहीं सकी । अन्त में उस धाय के परामर्श से एक लकड़ी की पेटी बनाकर उसमें उस बालक को रखा और रखकर भगवती से प्रार्थना की कि हे माँ ! इस बालक की रक्षा तुम करना । अब हम तो इसको छोड़ रहे हैं । इसको आप जीवित रखिएगा । यह बालक मरने न पाए । इसे आप ही दूध पिलाइएगा । आप सब कुछ कीजिएगा । भगवान् सबकी रक्षा करते हैं ।

एक कथा आती है कि एक ब्राह्मण दम्पति थे जो बहुत निर्धन थे। उनकी पत्नी के पेट में बच्चा आया और एक जंगल में उसका प्रसव हो गया। अब उस बच्चे का कैसे पालन करें ? रोज स्वयं ही भिक्षा माँगकर खाते थे। उन्होंने उस बालक के गले में भोजपत्र पर एक मन्त्र लिखकर बाँध दिया और उसे जंगल में छोड़कर चले गए ।

येन शुक्लीकृता हंसाः शुकाश्च हरितीकृता ।
मयूराश्चित्रिता येन स ते रक्षां विधास्यति ॥

जिस परमात्मा ने हंसों को सफेद बनाया, जिसने तोते को हरा बनाया और जिसने मोर के पंख में चित्रकारी की वह परमात्मा तेरी रक्षा करे।

ऐसा भोजपत्र पर लिखकर उस ब्राह्मण ने बालक के गले में ताबीज बनाकर बाँध दिया और चला गया । इसके पश्चात् क्या होता है कि भगवान् नरसिंह उस बालक की रक्षा के लिए आ जाते हैं । छोटा सा बालक था । जंगल में कोई भी जानवर खा सकता था । नरसिंह भगवान् उसके पास बैठ गए। उनके डर से उस बालक के पास कोई नहीं आ सका । इतने में एक राजा आखेट खेलते हुए आया । सिंह के पदचिह्नों को देखकर वहाँ पहुँचा जहाँ वह बालक था । भगवान् नरसिंह तो अन्तर्धान हो गए । बालक को लेकर राजा अपने राज्य में आ गया। उसका पालन-पोषण किया । जब बालक बड़ा हुआ तो भी वह केवल दूध ही पीता था और कुछ भी नहीं खाता था। सोचा गया कि उसका उपनयन संस्कार किस रूप में किया जाए ? यह बालक ब्राह्मण है कि क्षत्रिय है कि वैश्य है कैसे पता चले ? इसका पता लगाने के लिए वहीं जंगल में उस बालक को ले गए । बारह साल हो गया था । वे ब्राह्मण दम्पति भी बारह साल बाद जंगल में लौटकर आए । उन्होंने सोचा कि देखें कि परमात्मा ने उस बालक की रक्षा की या नहीं की ? राजा उस बालक को लेकर आया । ब्राह्मण-ब्राह्मणी भी वहाँ थे । राजा ने पूछा कि आप इस बालक को जानते हैं क्या ? उन दोनों ने पूछा कि क्या बात है तो राजा ने कहा कि हमें ये बारह साल पहले यहीं मिला था । अब ब्राह्मण-ब्राह्मणी बोले कि यह हमारा बेटा है । राजा ने पूछा कि इसमें प्रमाण क्या है ? कहा इसके गले में कुछ बँधा है देख लो । तब वो ताबीज खोली गई। उसमें यही लिखा था कि —

येन शुक्लीकृता हंसाः शुकाश्च हरितीकृताः ।
मयूराश्चित्रिंता येन स ते रक्षां विधास्यति ॥

राजा समझ गए कि यह बालक ब्राह्मण है । फिर उसका उपनयन संस्कार हुआ । वही नरसिंह भगवान् के परम भक्त हुए । उन्हीं का नाम श्रीधरस्वामी हुआ जो श्रीमद्भागवत के टीकाकार माने जाते हैं । उन्होंने

श्रीमद्भगवद्गीता पर भी टीका लिखी है । वे बहुत ही विद्वान् थे । ये लिखा है कि श्रीधर जो हैं वे भागवत के रहस्य को जानते हैं —

व्यासो वेत्ति शुको वेत्ति राजा वेत्ति न वेत्ति वा ।
श्रीधरस्सकलं वेत्ति श्रीनृसिंहप्रसादतः ॥

कहते हैं कि भागवत के रहस्य को व्यास जी जानते हैं, शुकदेव जी जानते हैं, राजा जानता है या नहीं जानता है यह नहीं कह सकते लेकिन भगवान् नरसिंह के प्रसाद से श्रीधर सब कुछ जानते हैं । ऐसे श्रीधरस्वामी की रक्षा भगवान् ने की ।

इसी तरह से कुन्ती ने भगवती से यह प्रार्थना करके कि हे भगवती तुम इस बालक की रक्षा करना यह कह कर एक काष्ठ की नाव जैसी पेटी बनाकर उसमें उस बालक को रखा और उसे ऊपर से बन्द कर दिया और छोड़ दिया । एक सूत ने जो अपने घोड़ों को पानी पिलाने के लिए नदी में आया था बहते हुए काष्ठ को देखा । पेटी पकड़ी और उसे खोला तो उसमें एक सुन्दर बालक दिखाई पड़ा । उसका कोई पुत्र नहीं था तो उसने उस बालक को अपनी पत्नी राधा को दे दिया । राधा उसका पालन-पोषण करने लगी । बालक बड़ा हुआ तो कर्ण अपने आपको राधेय समझने लगा । वह था तो कौन्तेय पर राधेय समझने लगा । इसी तरह से जो नित्य, शुद्ध, बुद्ध, मुक्तस्वभाव आत्मा है यह शरीर, इन्द्रिय, मन, बुद्ध के संयोग से अपने आपको जीव मानने लगा । आत्मा में जीवत्त्व का आरोप हो गया । इसी को एक दोहे में कहा गया है —

ज्यों अविकृत कौन्तेय में राधापुत्र प्रतीति ।
चिदानन्द घन ब्रह्म में जीवभाव परतीति ॥

जैसे कौन्तैय अविकृत है । कौन्तेय में कोई अन्तर नहीं है लेकिन राधा पुत्र की प्रतीति हो रही है । मैं राधा पुत्र हूँ ऐसा वह मान बैठा है । जिस समय उसको यह ज्ञान हो जाएगा कि मैं कुन्तीपुत्र हूँ तो उसका राधेय भाव मिट जाएगा । इसी तरह से जब ज्ञान हो जाएगा तो जीवभाव मिट जाएगा । जीवत्त्व इसमें आरोपित है । आरोपित वस्तु की निवृत्ति तपस्या से नहीं होती। कर्म से नहीं होती। वह ज्ञान से होती है । ऐसा ज्ञान जिसमें

है वह चाहे घर में रहे या घर के बाहर रहे उसके लिए कुछ भी अकार्य नहीं है ।

राजा जनक जी ने कहा कि मैं इसी भाव से संसार में रहता हूँ । राज्य करते हुए भी मैं राज्य से अनासक्त हूँ । शरीर में मेरी आत्मबुद्धि नहीं है । मैं ब्रह्मानन्द में ही सदा निमग्न रहता हूँ । इसीलिए मुझे विदेह कहते हैं । तुम भी इसी तरह से अपने आपको जानो । कहने का मतलब यह है कि जो अधिकारी है, जिसको ज्ञान हो गया है वह गृहस्थाश्रम में रहते हुए भी संन्यासी है ।

संन्यास दो प्रकार का होता है — एक अलिङ्ग संन्यास और एक लिङ्ग संन्यास । लिङ्ग संन्यास वह है जिसमें व्यक्ति दण्ड, कमण्डलु रखकर संन्यासी हो जाता है और दूसरे वह जो गृहस्थाश्रम में रहकर भी गृहस्थाश्रम का परित्याग कर देता है । परित्याग भी कैसा ? मन से परित्याग । मैं और मेरा छोड़ दो तो घर में बैठे ही संन्यासी और मैं और मेरा न छोड़ो तो घर छोड़कर भी कहाँ संन्यास ? इसीलिए इस मुख्य बात को पकड़ो कि इस अहंता और ममता का त्याग करना है । बाहर से त्याग नहीं हो सकता यही कहने का मतलब है ।

हम चातुर्मास्य कर रहे थे दिल्ली में । लोगों ने कहा कि गृहस्थाश्रमी भी पक्के मकान बनाकर रहता है । पक्के मकान में चातुर्मास्य कर रहे हो। तुममें और गृहस्थ में क्या अन्तर है ? हमने कहा कि अन्तर यह है कि जो गृहस्थ है वह समझता है कि मेरा मकान है और हम समझते हैं कि धर्मशाला है । थोड़े दिनों के लिए आए हैं । फिर जहाँ इच्छा होगी चले जाएँगे । इससे मेरा कोई सम्बन्ध नहीं है । ममता जब तक रहती है तब तक आसक्ति रहती है । आप देखिए कि जब आप नई-नई गाड़ी खरीदते हैं तो ड्राइवर से कहते हैं कि ऐसे चलाओ कि एक खरोंच भी न लगे । अगर खरोंच लग गई तो गड़बड़ हो जाएगी । बड़ी सावधानी से आप गाड़ी चलवाते हैं । खूब साफ करवाकर रखते हैं । लेकिन अगर आप उसको बेच दें और वह गाड़ी दूसरे की हो जाए तो खड्डे में गिरे तो आपको कोई फर्क नहीं पड़ेगा । क्योंकि तब वह गाड़ी आपकी जो नहीं है । अहंता और ममता का त्याग करो यही बात

राजा जनक जी ने शुकदेव जी को समझाई । शुकदेव जी लौट कर अपने पिता के यहाँ गए । फिर पिता की इच्छा के अनुसार गृहस्थाश्रम भी स्वीकार किया लेकिन उसमें आसक्त नहीं हुए । सन्तान को उत्पन्न किया । एक कन्या भी उत्पन्न हुई । उन सबको सन्मार्ग में प्रतिष्ठित करके फिर वे वहाँ से विरक्त हो गए । सर्वसिद्धिसम्पन्न होकर आकाशगमन करने लगे । इस तरह से शुकदेव जी ने अन्त में जब परिपक्वता की स्थिति हो गई तब संन्यास लिया। इसीलिए श्रीमद्भगवद्गीता में कहा —

संन्यासः कर्मयोगश्च निःश्रेयस्करावुभौ ।
तयोस्तु कर्मसंन्यासात् कर्मयोगो विशिष्यते ॥

हे अर्जुन ! संन्यास और कर्मयोग दोनों ही मनुष्य के कल्याण के साधक हैं लेकिन कर्म संन्यास से कर्मयोग श्रेष्ठ है । श्री मधुसूदन सरस्वती स्वामी जी ने कहा है —

अनधिकारि कृतात् कर्मसंन्यासात् कर्मयोगो विशिष्यते ।

अनधिकारी द्वारा किए गए कर्म संन्यास की अपेक्षा अधिकार का सम्पादक होने के कारण कर्मयोग श्रेष्ठ है । सकाम कर्म से बन्धन होता है। अगर आप कर्म करके उसका फल भगवान् के चरणों में अर्पित कर दें सब कुछ करके भी भगवान् को अर्पित कर दें और फल की आकांक्षा न रखें तो वह कर्म आपके बन्धन का हेतु नहीं होगा । वह बन्धन से मुक्ति का हेतु बनेगा। वह चित्त को शुद्ध कर देगा । इसीलिए कोई कर्म बन्धन का कारण तब बनता है जब कामनापूर्वक किया जाता है । जब निष्काम भाव से कर्म किया जाता है । भगवत्पादपंकजसमर्पण बुद्धि से किया जाता है, जगदम्बा के चरणों में अर्पित करने की बुद्धि से किया जाता है तो वही कर्म मनुष्य के कल्याण का साधक हो जाता है । यह बात श्रीशुकदेव जी के द्वारा सिद्ध हुई। यहाँ भी शुकदेव जी अन्त में संन्यासी होते हैं और जो श्रीमद्भागवत के शुकदेव जी हैं वे तो गर्भ से ही नहीं निकले । सोलह वर्ष तक माँ के पेट में ही रहे । क्योंकि उन्होंने देखा कि माँ के पेट में ज्ञान हो जाता है । आप देखिए कि पाँचवें महीने में माँ के पेट में जो बालक रहता है उसका सिर नीचे

और पैर ऊपर रहता है । एक तरह से उसका शीर्षासन लग जाता है । कुण्डलिनी जागृत हो जाती है उसकी । उसको वहाँ अपने पूर्व जन्म का स्मरण हो जाता है कि इतने जन्म हो गए हम अभी तक पड़े हुए हैं। बार-बार माता के उदर में आना पड़ रहा है । अब हम जब निकलेंगे तो भगवान् के भजन के सिवाय और कुछ नहीं करेंगे ।

इसलिए हम लोग तो कहते हैं कि जन्म से सब हिन्दू हैं । बाकी जितने भी मत मजहब हैं वे बाद में अपने-अपने मजहब में आते हैं । हमारे यहाँ तो जब बालक पेट में रहता है तभी भगवान् के भजन का संकल्प कर लेता है । जो भगवान् के भजन के संकल्प से पैदा हुआ है वह हिन्दू धर्म को मानने वाला है । भूल से इधर-उधर चला गया है । उसका ज्ञान उसको प्राप्त हो जाए तो अपने रास्ते पर आ जाता है । इसलिए हमलोग किसी से भेद-भाव नहीं रखते । सबमें एक ही आत्मा है। सबमें परमात्मा हैं और सभी लोग भगवान् के भजन के अधिकारी हैं । साधन सबके अलग-अलग हैं । शास्त्र के अनुसार लोग अपना-अपना साधन करके मोक्ष को प्राप्त कर सकते हैं ।

कहने का अभिप्राय यह है कि कर्मबन्धन से छूटने का उपाय यही है कि निषिद्ध कर्मों का त्याग करे । निषिद्ध कर्मों का तो स्वरूपतः त्याग कर दे और जो विहित कर्म हैं उनको कामना का त्याग कर अनुष्ठान करे तो वह कर्म हृदय को पवित्र कर देता है। तत्त्वज्ञान की तीव्र जिज्ञासा होती है और इच्छा होती है तो श्रोत्रिय, ब्रह्मनिष्ठ, सद्गुरु की शरण में जाकर वेदान्त का श्रवण, मनन, निदिध्यासन करे और तत्त्वज्ञान प्राप्त करे तो व्यक्ति जीवन्मुक्त हो जाता है । जो जीवन्मुक्त हो गया वह चाहे सफेद कपड़े में रहे या गेरुए कपड़े में रहे दोनों मोक्ष के अधिकारी होते हैं । इसी तरह से जो नारियाँ हैं वे भी भिक्षुणी बनें, दण्ड-कमण्डलु धारण करें यह जरूरी नहीं है । जैसे देवहूति को ज्ञान हो गया तो वह अपने आपको शरीर से अलग समझने लगी और मुक्ति को प्राप्त कर गई । श्रीमद्भागवत में इसकी कथा है । जो जहाँ है, जिस रूप में है उसी रूप में तत्त्वज्ञान प्राप्त करके अपने हृदय को शुद्ध

बनाकर मोक्ष पदवी को प्राप्त करे यह बात जनक जी और शुकदेव जी के संवाद से सिद्ध होती है ।

श्री राम जय राम जय जय राम
प्यारे जरा तो मन में विचारो क्या साथ लाए अरु ले चलोगे
जाता सदा साथ यही पुकारो गोविन्द दामोदर माधवेति
गोविन्द दामोदर माधवेति हे कृष्ण हे यादव हे सखेति
श्रीकृष्ण गोविन्द हरे मुरारे हे नाथ नारायण वासुदेव
श्रीकृष्ण गोविन्द हरे मुरारे हे नाथ नारायण वासुदेव
धर्म की जय हो । अधर्म का नाश हो ।
प्राणियों में सद्भावना हो । विश्व का कल्याण हो ।
गोमाता की जय हो । गोहत्या बन्द हो ।
हर हर महादेव ।

चतुर्थ दिवस

भगवती की उपासना से सबकी उपासना हो जाती है

समुपस्थित विद्वद्वृन्द ! देवियो ! सज्जनो !

देवी भागवत की परम पवित्र कथा आप सुन रहे हैं । भगवती राजराजेश्वरी जगदम्बा सबकी आराध्या हैं । सब देव उन्हीं की आराधना करते हैं । उन्हीं की शक्ति से शक्तिमान् होकर समस्त कार्य करते हैं । इसीलिए आपने देखा होगा कि अपने परमहंसी के मन्दिर में भगवती जिस सिंहासन पर विराजमान हैं उस सिंहासन के चार पाए जो हैं, उनमें ब्रह्मा, विष्णु, रुद्र, ईश्वर चारों बैठे हैं और ऊपर सदाशिव का फलक है जिनकी नाभिकमल में भगवान् कामेश्वर के अङ्क में जगदम्बा राजराजेश्वरी विराजमान् हैं । इसका अर्थ यह है कि ये जितने भी देवतागण हैं ये जगदम्बा से ही शक्ति लेकर, शक्तिमान् होकर अपना-अपना कार्य करते हैं । इसीलिए उनके नाम का वर्णन आता है **पञ्चप्रेतासनासीना पञ्चब्रह्मासनस्थिता** । वे पाँच प्रेतों के आसन पर आसीन हैं और फिर **पञ्चब्रह्मासनस्थिता** कहा । उसी को कहते हैं पाँच ब्रह्म के आसन पर स्थित है । इसका अर्थ क्या है ? ब्रह्म शब्द से क्या लिया जाए ? यह माना जाता है कि जो शक्तिसंवलित परमात्मा है वह ब्रह्मपदवाच्य है । जो शक्ति से संवलित है वह परमात्मा किसके आश्रित है ? उसकी प्रतिष्ठा क्या है ? उसकी प्रतिष्ठा प्रत्यगात्मा है। जो हमारे हृदय में विद्यमान् तीनों अवस्थाओं की साक्षिणी परमचिति है उस चिति में ही मायासंवलित ब्रह्म प्रतिष्ठित है । उसी में अध्यस्त है । वह परमात्मा, माया संवलित ब्रह्म जिसके आश्रित है, जिसके बिना ब्रह्मा, विष्णु, रुद्र, ईश्वर और सदाशिव ये पाँचों निष्क्रिय हो जाते हैं और जिनके साथ जुड़ने से उनमें शक्ति आ जाती है वही

पाँच प्रेत ही पञ्च ब्रह्म हैं । उनके आसन पर जगदम्बा विराजमान् हैं । ऐसी स्थिति में वे सबकी आराध्या हैं। सब उनकी आराधना करते हैं । उनकी आराधना से सबकी आराधंना हो जाती है । भगवान् आद्य शङ्कराचार्य ने सौन्दर्यलहरी स्तोत्र में कहा कि —

त्रयाणां देवानां त्रिगुणजनितानां तव शिवे
भवेत्पूजा पूजा तव चरणयोर्या विरचिता ।
तथा हि त्वत्पादोद्वहनमणिपीठस्य निकटे
स्थिता ह्येते शश्वन्मुकुलितकरोत्तंसमकुटाः ॥

इसका अर्थ यह हुआ कि ये तीन देवता हैं । जब देवी रजोगुण को स्वीकार कर लेती हैं तब ब्रह्मा उत्पन्न हो जाते हैं, सत्त्वगुण को स्वीकार करके विष्णु बन जाती हैं, तमोगुण को स्वीकार करके रुद्र बन जाती हैं । जो इन सबकी आश्रयभूता हैं उनकी पूजा से सबकी पूजा हो जाती है । इसीलिए जगदम्बा की पूजा सबके द्वारा की जाती है और वही प्राणी को भोग-मोक्ष यहाँ तक कि अर्थ, धर्म, काम, मोक्ष चारों पुरुषार्थों को प्रदान करती हैं । उन भगवती की आराधना उनके व्रत से होती है । चार नवरात्र हैं । दो प्रकट हैं और दो गुप्त हैं । व्रत करके भगवती की आराधना लोग करते हैं और उनकी आराधना उनके चरित्र को वर्णन करने वाली जो देवी भागवत है उसके श्रवण से होती है और उनका जो मन्त्र है उस मन्त्र के जप से भी उनकी आराधना होती है । उनके मन्त्र में बीजाक्षर हैं । देवी का जो नवार्ण मन्त्र है उसके तीन बीज हैं - **ऐं ह्रीं क्लीं** । पूरा मन्त्र कोई न जप सके और केवल **ऐं** ही जप ले तो समस्त विद्याओं को प्राप्त कर लेता है ।

एक आख्यान आता है कि एक ब्राह्मण था । उसके कोई सन्तान नहीं थी । उसने पुत्रेष्टि यज्ञ किया । बड़े-बड़े विद्वान् वैदिक उसमें आमन्त्रित हुए। उनमें से एक विद्वान् सामगान कर रहा था । सामगान करते-करते बीच में कहीं श्वाँस ले लेने से अपस्वर हो गया । स्वर में कुछ अन्तर पड़ गया तो उस ब्राह्मण ने टोक दिया कि तुमने अशुद्ध मन्त्र का उच्चारण कर दिया। उस विद्वान् ने कहा कि भाई हमने श्वाँस ले लिया । बिना श्वाँस के मनुष्य का जीवन कैसे रह सकता है ? भूल हो गई हमसे । यजमान माना नहीं तो

उन्होंने कह दिया कि तुम जिस लड़के के लिए पुत्रेष्टि यज्ञ कर रहे हो वह मूर्ख हो जाएगा । ऐसा शाप दे दिया । अब ब्राह्मण बड़ा घबड़ाया और सोचा कि मूर्ख लड़का किसी काम का नहीं । मूर्ख की पूजा नहीं करनी चाहिए । मूर्ख को श्राद्ध में नहीं बुलाना चाहिए। जो सन्ध्या न करे, जो गायत्री न जपे, जो वेद न पढ़े उस ब्राह्मण का मूल्य ही क्या है ? विद्वान् के चरणों में ब्राह्मण गिरा और बोला कि महाराज ! आपने शाप दे दिया । हमारा मूर्ख पुत्र होगा तो इससे तो अच्छा कि हम बिना पुत्र के ही रहें । यह माना जाता है कि यदि बेटा बुद्धिमान् हो, गुणवान् हो तब तो बेटा ठीक है और बेटा हो पर वह मूर्ख हो तो उससे तो बिना बेटे के ही अच्छा । हम आपकी शरण में आए हैं । अब आप ही अनुग्रह कीजिए। विद्वान् ने कहा कि ठीक है । तुम्हारा बेटा बाद में बुद्धिमान् हो जाएगा । संयोग से उसका पुत्र हुआ और उन्होंने उसका नाम रखा सत्यव्रत । वह बिल्कुल मूर्ख था । ब्राह्मण ने सत्यव्रत को वेद पढ़ाने का बहुत प्रयास किया, सन्ध्या का उपदेश दिया लेकिन वह कुछ ग्रहण ही नहीं करता था ।

हारेउ पिता पढ़ाइ-पढ़ाई ।

पिता पढ़ा-पढ़ा कर हार गया । बारह साल हो गए । लेकिन बालक ने कुछ भी नहीं पढ़ा । माता-पिता ने उसे घर से निकाल दिया । घर से निकल कर कहाँ जाए ? वह एक जंगल में चला गया । सत्यव्रत के मुख से निकला **ऐ ऐ** । **ऐं** भगवती का वाग्बीज है । सत्यव्रत के मुख से पूरा **ऐं** नहीं निकला । केवल **ऐ** बोला । उसमें अनुस्वार नहीं था पर भगवती उसी से प्रसन्न हो गईं । इसकी मूर्खता दूर हो गई । शिकारी आया और पूछा कि महाराज ! इधर से सुअर निकला है क्या ? आप बता दीजिए । हमारे परिवार के लोग भूखे हैं । शिकार के बल पर ही हम सबका जीवन चलता है । आज हमको यह सूअर मिला है । इसे मारकर आज हम इसका माँस ले जायेंगे और बाल-बच्चों को खिलायेंगे । आप बता दीजिए कि सूअर किधर गया है ? इन्होंने सोचा कि यदि हम बतायेंगे कि इधर ही है तो बेचारा सूअर मारा जाएगा और नहीं बतायेंगे तो इसके परिवार के लोग भूखे रह जायेंगे । क्या करें ? व्याध ने कहा कि आप सत्यव्रत हो अतः सत्य ही बोलो। उसने कहा

कि देखिये । जो देखता है वो बोलता नहीं है और जो बोलता है वो देखता नहीं है । आँख देखती है तो आँख बोलती नहीं और जीभ बोलती है तो वो देखती नहीं है । हम क्या बतायें ? इस तरह से उसने वर्णन किया । भगवती की कृपा से वह परम विद्वान् बन गया । फिर एक स्थान पर किसी ब्राह्मण ने अनेक विद्वानों को बुलाया और कहा कि जो सबसे अधिक विद्वान् होगा उसको हम अपनी कन्या देंगे । सत्यव्रत वहाँ पहुँच गया और उन सब विद्वानों के सामने इसने अपना वैदुष्य प्रकट किया। इसको कन्या की प्राप्ति हुई और वहाँ से उसको धन-सम्पत्ति भी मिली । माता-पिता की सेवा की । इस तरह से भगवती के एक बीजमन्त्र के प्रभाव से सत्यव्रत का कल्याण हो गया ।

भगवती का एक बीजमन्त्र है क्लीं । क्लीं और क्रीं दो बीजमन्त्र होते हैं । काली का बीजमन्त्र **क्रीं** है और कृष्ण का कामराज बीज है **क्लीं**। यह भगवती का भी बीजमन्त्र है । नवार्ण मन्त्र में भी **ऐं ह्रीं क्लीं** आता है। ककार में और रकार में भेद नहीं है । **तयोरभेदः**। इसलिए **क्लीं** और **क्रीं** दोनों एकार्थक हैं । एक बड़ी विचित्र कथा आती है । बंगाल में एक बहुत बड़े काली के भक्त हो गए हैं वामाक्षेपा । वामाक्षेपा उनका नाम था । क्षेपा माने पागल । वे भगवती का **क्लीं** मन्त्र जपते थे । पूरा मन्त्र नहीं, केवल **क्लीं क्लीं क्लीं** यही जपते थे । इनके मन्त्र से प्रसन्न होकर भगवती काली प्रकट हुईं और बोलीं कि अरे ! वामा तेरा मन्त्र अशुद्ध है । **क्लीं** मत कह **क्रीं** कह। वामाक्षेपा बोला हमारा मन्त्र शुद्ध है । भगवती कहती हैं अशुद्ध है और वो कहता है शुद्ध है । भगवती बोली कि कैसे कहता है कि शुद्ध है? तो वे बोले कि यदि हमारा मन्त्र अशुद्ध होता तो उसको शुद्ध करने के लिए तुम क्यों आती ? तुम यहाँ आई शुद्ध करने के लिए इसका मतलब है कि यह शुद्ध है ।

देवी भागवत में कथा आती है कि एक ध्रुवसन्धि नाम का राजा था। उसकी दो पत्नियाँ थी । एक का नाम था मनोरमा और दूसरी का नाम था लीलावती । दोनों बड़े प्रेम से रहती थीं । बड़ी रानी मनोरमा का पुत्र हुआ सुदर्शन और दूसरी रानी लीलावती का पुत्र बाद में हुआ । उसका नाम था शत्रुजित् । दोनों पुत्रों में शत्रुजित् बड़ा सुन्दर था और राजा को उससे बड़ा प्रेम

था । एक बार राजा आखेट खेलने गया । उस आखेट में एक सिंह राजा के सामने आ गया । राजा ने उसको मारने का बहुत प्रयत्न किया । अनेक बाण छोड़े लेकिन वह सिंह घायल होकर भी टूट पड़ा और उसने राजा को मार डाला । राजा ध्रुवसन्धि मारा गया । राजा के शव को लेकर साथ के लोग आए । उनका और्ध्वदैहिक संस्कार किया गया । अब प्रश्न आया कि राजा के उत्तराधिकारी के रूप में किसका चयन किया जाए ? मनोरमा के पिता का नाम था वीरसेन और लीलावती का पिता था युधाजित्। वे दोनों वहाँ आ गए। दोनों में झगड़ा हो गया कि हम अपने नाती को ध्रुवसन्धि के स्थान पर सिंहासन देंगे । लड़ाई में युधाजित् के द्वारा वीरसेन मारा गया । जब वीरसेन मारा गया तो युधाजित् चाहता था कि हम अपने नाती शत्रुजित् को राजसिंहासन पर बिठाल दें । मनोरमा का पुत्र सुदर्शन छोटा था । मनोरमा घबड़ाई । उसने सोचा कि हमारा शत्रु जब हमारे पिता को मारकर आएगा तो हमारे बेटे को भी मार डालेगा । अच्छा हो कि हम इसको कहीं अन्यत्र ले जाएँ । एक मन्त्री ने उसका साथ दिया । मन्त्री के साथ मनोरमा अपने बेटे सुदर्शन को वहाँ से हटाकर चित्रकूट में भरद्वाज मुनि के आश्रम में ले गई । मनोरमा, सुदर्शन और उसका मन्त्री भरद्वाज मुनि के आश्रम में निवास करने लगे । एक बार वहाँ किसी ने मन्त्री से **क्लीं** कह दिया तो सुदर्शन ने **क्लीं** पकड़ लिया । **क्लीं क्लीं क्लीं** भगवती के मन्त्र का जप करने लगा । उससे भगवती प्रसन्न हो गईं । सुदर्शन जगदम्बा के **क्लीं** मन्त्र के द्वारा आराधन करने लगा । भगवती उसके ऊपर प्रसन्न हुईं और उसको वरदान दिया ।

इधर क्या होता है कि युधाजित् को यह पता लग जाता है कि मनोरमा सुदर्शन के साथ भरद्वाज मुनि के आश्रम में रह रही है । वह वहाँ सेना लेकर पहुँच गया और भरद्वाज मुनि से कहा कि सुदर्शन को हमें सौंप दो । हम उसे जीवित नहीं छोड़ेंगे । क्योंकि उसको डर था कि कहीं सुदर्शन बचा रहा तो मेरे बेटे का राज्य छीन लेगा । भरद्वाज जी ने कहा कि यह नहीं हो सकता। शरणागत का त्याग करना उचित नहीं है । ये लोग हमारी शरण में आए हैं। आपमें ताकत हो तो आप इन्हें ले जाइए । अपनी शक्ति से ले जाइए । युधाजित् ने अपने मन्त्री से परामर्श किया कि ये मुनि हैं । इनमें

शक्ति बहुत बड़ी है । तुम्हारी ताकत काम नहीं करेगी ।

उसने एक कथा सुनाई कि एक बार विश्वामित्र जी आखेट खेलते हुए वशिष्ठ जी के आश्रम में गए । विश्वामित्र जी तब राजा थे । बाद में ब्राह्मण हुए । वशिष्ठ जी के पास कामधेनु की बेटी नन्दिनी थी । उसी के प्रभाव से उन्होंने राजा विश्वामित्र का और उनकी सेना का स्वागत किया । स्वागत से वे प्रसन्न हो गए और कहा कि आप तो जंगल में रहते हैं । आपके पास इतनी सम्पत्ति कहाँ से आ गई ? उन्होंने कहा कि मेरे पास सम्पत्ति नहीं है । मेरे पास एक गौ है । इसका नाम नन्दिनी है । यह कामधेनु की पुत्री है । उसी के प्रभाव से हमने आपकी सेवा की है । विश्वामित्र बोले कि तुम्हारे जैसे गरीब पण्डित के पास यह गौ शोभा नहीं देती । यह तो राजा की चीज है । हम इसको ले जायेंगे । वशिष्ठ जी ने कहा कि हमारे पास हमारी जीविका का एकमात्र साधन यह गौ है । हम अग्निहोत्र करते हैं । इसी से हम आने वालों का स्वागत करते हैं । गौ लेकर जायेंगे तो हमारे पास क्या रह जाएगा ? विश्वामित्र जी ने कहा कि ले ही जायेंगे और कामधेनु की पुत्री नन्दिनी के गले में रस्सी बाँधकर खींचना शुरु किया । कामधेनु की बेटी वशिष्ठ जी की तरफ देखकर रोई । कहने लगी कि आप मुझे क्यों छोड़ रहे हो ? हम तुम्हें छोड़कर कहीं नहीं जाना चाहती । वशिष्ठ जी बोले हम विवश है । क्या करें? राजा जबरदस्ती ले जा रहा है । तभी नन्दिनी ने क्रोध किया और उसके नथुनों से बहुत से म्लेच्छ निकले और उन्होंने विश्वामित्र जी की सेना पर आक्रमण कर दिया । लेकिन विश्वामित्र की सेना ने उन सबको मार डाला । अब नन्दिनी विवश हो गई जाने के लिए । जब जाने लगी तो वशिष्ठ जी ने दण्ड उठाया और ऐसा मन्त्र पढ़ा कि विश्वामित्र जी के हाथ-पैर जकड़ गए । सेना का मल-मूत्र रुक गया । सब स्तम्भित हो गए । अब वशिष्ठ जी के सामने विश्वामित्र गिड़गिड़ाए कि हमें छोड़ दो, हमें छोड़ दो । वशिष्ठ जी ने कहा कि चुपचाप चले जाओ । और कहा कि —

धिग्बलं क्षत्रिय बलं ब्रह्मतेजो बलं-बलम् ।

विश्वामित्र जी ने कहा कि क्षत्रिय बल को धिक्कार है । ब्रह्म तेज ही बल है । एक ब्रह्मदण्ड से मेरा सारा बल व्यर्थ चला गया । अब हम ब्राह्मण

बनेंगे । क्षत्रिय नहीं रहेंगे । फिर उन्होंने तपस्या शुरु की ।

मन्त्री ने बताया कि मेरे कहने का मतलब यह है कि यदि तुम अपनी शक्ति का प्रयोग करोगे तो जैसे विश्वामित्र जी की दशा हुई वैसी ही दशा तुम्हारी भी हो जाएगी । अतः तुम चुपचाप चले जाओ । फिर युधाजित् वहाँ से चुपचाप चला गया ।

इधर क्या हुआ कि एक ब्राह्मण अयोध्या गया । वहाँ एक सुबाहु नाम के राजा रहते थे । सुबाहु की एक बहुत सुन्दरी कन्या थी जिसका नाम था शशिकला । शशिकला से उस ब्राह्मण ने सुदर्शन की प्रशंसा की । उसके सौन्दर्य का वर्णन किया । गुणों का वर्णन किया तो शशिकला ने मन में उसी को अपना पति बनाने का निश्चय कर लिया । इधर राजा सुबाहु ने अपनी कन्या के लिए स्वयंवर की रचना की थी । अनेक देशों के राजा आए उस स्वयंवर में । वहाँ युधाजित् भी अपने बेटे के साथ आ गया । अब सब राजा आसन पर बैठे । कहा गया कि कन्या को बुलाया जाए । माता ने कहा कि बेटी ! स्वयंवर में चलो और जिसको तुम ठीक समझो उसके गले में वरमाला डाल दो । कन्या ने कहा कि माँ ! हमने तो निश्चय कर लिया है कि हम सुदर्शन को ही अपना पति बनायेंगे । हम इस स्वयंवर में नहीं जायेंगे । माँ ने अपने पति से कहा कि शशिकला स्वयंवर में नहीं जाना चाहती । सुबाहु ने अपनी बेटी को समझाया कि ऐसा मत करो । सब राजा आ गए हैं । यदि तुम स्वयंवर में नहीं जाओगी तो ये सब के सब मिलकर हमें मार डालेंगे। बलशाली थे सब । शशिकला ने कहा कि कुछ भी हो मैं स्वयंवर में किसी को देखने नहीं जाऊँगी । मैं तो केवल सुदर्शन से ही ब्याह करूँगी। शशिकला ने सुदर्शन को यह सन्देश भेज दिया । भगवती ने प्रसन्न होकर सुदर्शन को एक रथ दे दिया था । वह रथ में बैठकर शशिकला के पास जाने लगा तो माँ मनोरमा बोली कि बेटा ! मत जा । वहाँ बड़े-बड़े राजा आयेंगे। युधाजित् भी आएगा । हो सकता है तुम्हारी मृत्यु हो जाए । उसने कहा चाहे कुछ भी हो जाए मैं तो जाऊँगा । फिर मनोरमा भी रथ पर बैठ गई और दोनों साथ में गए । अयोध्या के राजा ने सुदर्शन का स्वागत किया और शशिकला के अनुरोध पर एकान्त स्थान में ले जाकर शशिकला का विवाह सुदर्शन से

करवा दिया । जब विवाह हो गया तब सभी राजाओं को पता चला । कुछ को तो समझा दिया गया पर बहुत से नहीं माने । सुदर्शन जब विदा होकर चित्रकूट की ओर जा रहा था तभी इतने में युधाजित् अपने मित्र राजाओं के सहित आकर सुदर्शन को मारना चाहा । राजा सुबाहु की भी सेना आ गई । युद्ध होने लगा । युद्ध में जब राजा सुबाहु की सेना निर्बल होने लगी तो जगदम्बा साक्षात् प्रकट हो गईं । जगदम्बा ने अपनी योगिनियों के साथ प्रकट होकर स्वयं भयंकर युद्ध किया और उस युद्ध में युधाजित् और शत्रुजित् को मार डाला । इस तरह से भगवती ने सुदर्शन की रक्षा की । भगवती ने कहा कि अब तुम अयोध्या जाओ और सिंहासन पर आरूढ़ हो जाओ । भगवती की आज्ञा से सुदर्शन अयोध्या गया और सिंहासन पर आरूढ़ हो गया । इधर अयोध्या में भगवती की स्थापना हुई और राजा सुबाहु के नगर में भी भगवती की आराधना हुई । **क्लीं** बीज के जप का इतना प्रभाव हुआ कि सुदर्शन का खोया हुआ राज्य उसको पुनः प्राप्त हो गया । भगवती के मन्त्र का महत्त्व है और इसी तरह से भगवती दैत्यों को मारती हैं ।

एक कथा आती है देवी भागवत में महिषासुर की । दुर्गा सप्तशती में भी आप लोग पढ़ते हैं । रम्भ-करम्भ दो दानव थे । कश्यप की दो पत्नियाँ ऐसी थी जिनसे असुर जन्म लेते थे । एक दिति और दूसरी दनु । दिति से दैत्य होते थे और दनु से दानव होते थे । ये दुष्ट होते थे । प्रश्न यह आता है कि देवता और दानव; जब ये दोनों ही कश्यप के पुत्र थे, भाई-भाई थे तो दैत्य-दानव क्यों बुरे माने जाते हैं और भगवान् विष्णु देवताओं के पक्ष में क्यों रहते हैं ? दैत्यों में क्या गड़बड़ी है ? इनमें तो कोई कमी नहीं है । पिता दोनों के ही कश्यप हैं । बात यह है कि देवता सत्कर्म करके अपना स्थान प्राप्त करते हैं । जैसे इन्द्र वह बनता है जो सौ अश्वमेध यज्ञ करता है । इसलिए उसका नाम है शतक्रतु । इसी तरह से जो देव बनते हैं वे यज्ञ-यागादि से अपने पुण्य के फलस्वरूप देवलोक में जाते हैं । यह उनका वैध मार्ग है । वैध रीति से जो अपना पद अर्जित करता है वह न्यायोचित कर्म करता है और इसके विपरीत दानव क्या करते थे कि जबरदस्ती अपनी ताकत के बल पर सब कुछ प्राप्त कर लेना चाहते थे । ताकत के बल पर किसी का

धन छीन लेना किसी को अधिकार से च्युत कर देना बुरा काम है । यही आसुरी सम्पत् है । आसुरी सम्पत् और दैवी सम्पत् का वर्णन भगवद्गीता में भगवान् श्रीकृष्ण ने किया है —

अभयं सत्त्वसंशुद्धिर्ज्ञानयोगव्यवस्थितिः ।
दानं दमश्च यज्ञश्च स्वाध्यायस्तप आर्जवम् ॥
अहिंसा सत्यमक्रोधस्त्यागः शान्तिरपैशुनम् ।
दया भूतेष्वलोलुप्त्वं मार्दवं ह्रीरचापलम् ॥
तेजः क्षमा धृतिः शौचमद्रोहो नातिमानिता ।
भवन्ति सम्पदं दैवीमभिजातस्य भारत ॥

किसी से न डरना अभय है । जो व्यक्ति किसी का अनिष्ट नहीं चाहता उसको किसी से भय नहीं लगता । भय उसको लगता है जब कोई किसी से द्रोह करता है । किसी का अनिष्ट करता है तो उसको उसी समय भय उत्पन्न हो जाता है कि ये बदला लेगा । जो किसी का अनिष्ट नहीं चाहता, सबका कल्याण चाहता है जिसने यह संकल्प कर लिया है कि हम किसी को दण्डित नहीं करेंगे वह अभय रहता है । ये अभय है । **सत्त्वसंशुद्धिः**। अपने अन्तःकरण को शुद्ध बनाना । अन्तःकरण को शुद्ध कैसे बनायेंगे ? मन में जो रजोगुण और तमोगुण के भाव हैं उनको दूर करें और सत्त्वगुणी भावों को मन में लाएँ । मानस में लिखा है गोस्वामी तुलसीदास जी ने कि—

कृषीं निवारहिं चतुर किसाना ।
जिमि बुध तजहिं मोह मद माना ।

चतुर किसान कृषि को निवारते हैं । इधर अपने मध्य प्रदेश में नीधरा कहते हैं । जब फसल उगती है तो साथ-साथ में गलत चारा भी उग जाता है तो खुरपी से खुरच-खुरच कर चारे को अलग कर देते हैं जिससे कि पौधा आगे बढ़े और उसकी वृद्धि में कोई अड़चन न आए । ऐसे ही बुद्धिमान् लोग अपने मन से मोह, मद और मान जैसे दुर्गुणों को दूर करके सद्गुणों को रखते हैं । यही हो गया सत्त्वसंशुद्धि ।

ज्ञानयोगव्यवस्थितिः । सत्संग के द्वारा परमात्मा का ज्ञान प्राप्त करना, वेदान्त के द्वारा श्रवण, मनन, निदिध्यासन करना और उसमें अपना

मन लगाना यही **ज्ञानयोगव्यवस्थितिः** है । अपने पास जो धन है उसको अच्छे काम में लगाना । धन का अर्जन करके मनुष्य को उसे अच्छे काम में लगाना चाहिए । हमारे यहाँ एक शुक्रनीति है । उसमें लिखा है कि मनुष्य को अपनी आय के पाँच विभाग करना चाहिए —

धर्माय यशसेर्थाय कामाय स्वजनाय च ।
पञ्चधा विभजन् वित्तं इहामुत्र च मोदते ॥

लिखा है कि जो कुछ आमदनी हो उसमें से 1/5 भाग धर्म में लगाए, 1/5 भाग यश में लगाए, 1/5 भाग अपने काम के लिए रखे, 1/5 भाग अपने मूल धन के लिए रखे और 1/5 भाग दीन-दुखियों की सेवा, अपने आश्रितों की सेवा और अतिथियों की सेवा के लिए रखे । जो व्यक्ति अपने धन का पाँच विभाग करता है उसके लिए बताया कि **इहामुत्र च मोदते** अर्थात् जब आप अपने धन के पाँच विभाग करेंगे और बाँट कर खायेंगे तो लोग आपके मित्र बनेंगे और दूसरों का हड़प कर खायेंगे तो आप उनके शत्रु बन जायेंगे । इसलिए इस लोक में वही सुखी रहता है जो बाँटकर खाता है, धर्म के काम में लगाता है । धर्म के काम में लगाने से क्या होता है ? आप देखिये जब मनुष्य संसार छोड़कर जाता है तो उसके साथ यहाँ से कुछ भी नहीं जाता ।

धनानि भूमौ पशवश्च गोष्ठे नारी गृहद्वारि जनाः श्मशाने ।
देहश्चितायां परलोक मार्गे धर्मानुगो गच्छति जीव एकः ॥

जितना भी धन है वह यहीं धरती पर रह जाएगा, बैंक का बैंक में ही रह जाएगा । पशु गोष्ठ में बँधे रह जायेंगे । स्त्री घर के दरवाजे तक पहुँचा कर लौट जाएगी । स्वजन बन्धु-बान्धव श्मशान तक जायेंगे । शरीर चिता तक जाएगा और उसके बाद जब आपकी परलोक की यात्रा होगी तो आपके साथ यहाँ से एक कौड़ी नहीं जाएगी । केवल आपके साथ आपका किया हुआ धर्म ही जाएगा । आप देखिए कि जब आप अपना घर छोड़कर बाहर कहीं जाते हैं तो पहले से प्रबन्ध कर लेते हैं कि वहाँ जाकर हम कहाँ ठहरेंगे और क्या खायेंगे ? आप लोग संक्रान्ति के पर्व पर नर्मदा स्नान करने जाते हैं तो वहाँ खाली हाथ नहीं जाते, कलेवा ले जाते हैं । वहाँ जाकर आप नहाने

के बाद कलेवा करते हैं । इसलिए क्योंकि वहाँ आपका कौन है ? आपका कलेवा ही तो आपका काम देगा । इसी तरह से जब परलोक में जायेंगे तो यहाँ से तो कुछ भी जाएगा नहीं । अब आप सोचिए कि जहाँ से आप चिट्ठी दे सकते हैं, मोबाइल से बात कर सकते हैं, मनीआर्डर कर सकते हैं, बैंक से व्यवस्था कर सकते हैं वहाँ के लिए तो प्रबन्ध कर रहे हो। मरने के बाद कहाँ रहोगे कुछ पता चलेगा ? आपके दादे-परदादे कहाँ गए? कोई तार आया आपके पास ? वे कहाँ हैं ? साथ तो कुछ जाएगा नहीं तो जो यहाँ से पुण्य करके जाएगा उसका पुण्य वहाँ उसकी सहायता करेगा । **अमुत्र** माने उस लोक का उसको सुख मिलेगा और अच्छे काम करेगा तो **इह** माने इस लोक में यश होगा । लोग कहेंगे कि अच्छा काम किया ।

कौन व्यक्ति स्वर्ग गया और कौन नरक गया इसकी क्या पहचान है? इसकी पहचान यही है कि जिसके मरने के बाद लोग रोएँ कि बहुत बुरा हुआ, अच्छा आदमी था तो समझना चाहिए कि वह स्वर्ग गया और जिसके मरने के बाद लोग कहें कि अच्छा हुआ मर गया, पाप कटा तो समझ लो कि श्रीमान् जी पहुँच गए नरक में । संसार में जिसका यश रहता है वह स्वर्ग से नहीं गिरता । जिसने मन्दिर बनाया, जिसने कुछ दान-धर्म किया, पाठशाला बनाई, धर्मशाला बनाई, कुँआ खुदवाया, तालाब बनवाया, और भी अच्छे-अच्छे काम किए और जिसको जानने वाले लोग जब तक इस संसार में रहते हैं वह प्राणी स्वर्ग से नहीं गिरता। इसलिए धर्म और यश में धन लगाओ । 1/5 धर्म में लगाओ, 1/5 यश में लगाओ और फिर अपने काम में लगा लो । लेकिन सब मत खा लो। कहीं अकाल पड़ जाए तो बीच के लिए भी तो बचा कर रखो । कुछ मूलधन की रक्षा के लिए भी रखना चाहिए । फिर अपने स्वजन बन्धु-बान्धवों के लिए, दीन-दुःखियों के लिए दो । इस तरह से पाँच विभाग धन का किया जाए तो प्राणी का कल्याण होता है ।

धर्म एक ऐसी वस्तु है जिसके द्वारा मनुष्य को परलोक में भी सुख प्राप्त होता है । वही धर्म यदि आप सकाम भाव से करते हैं तो आपको स्वर्ग मिलेगा और निष्काम भाव से करते हैं तो उससे आपका चित्त शुद्ध होगा ।

जब चित्त शुद्ध होगा तो भगवान् को प्राप्त करने की इच्छा पैदा होगी । जैसा कि बताया काकभुशुण्डि जी ने कि —

मन ते सकल बासना भागी । केवल राम चरन लव लागी।

सब कामनाएँ मन से निकल जाएँगी और केवल भगवान् के चरणों को प्राप्त करने की इच्छा रह जाएगी । धर्म से यह लाभ है । आप धर्म कर रहे हैं, तीर्थयात्रा कर रहे हैं, दान कर रहे हैं तो उसका फल क्या है ? फल यही है कि आपका हृदय शुद्ध होगा और उस शुद्ध हृदय में जिज्ञासा उत्पन्न होगी। परमात्मा को जानने की इच्छा उत्पन्न हो जाए तो समझ लो कि धर्म का फल हो गया । हम यह बता रहे थे कि देवताओं को स्वर्ग की प्राप्ति अपने धर्म के फलस्वरूप होती है । एक आदमी खेती करके नौकरी करके व्यापार करके धन का अर्जन कर रहा है धर्म के काम में लगा हुआ है और कोई दूसरा जाकर हड़प ले तो वह दैत्य है ।

दानं दमश्च यज्ञश्च स्वाध्यायस्तप आर्जवम् ॥
अहिंसा सत्यमक्रोधस्त्यागः शान्तिरपैशुनम् ।
दया भूतेष्वलोलुप्त्वं मार्दवं ह्रीरचापलम् ॥
तेजः क्षमा धृतिः शौचमद्रोहो नातिमानिता ।

दान, तप, यज्ञ, स्वाध्याय, अहिंसा, सत्य, अक्रोध, त्याग, शान्ति, चुगली न करना, प्राणियों के ऊपर दया करना, लोभ न करना, कोमल भावना रखना, बुरे काम से लज्जा करना, चंचलता न रखना ये दैवी संपत् है ।

आसुरी संपत् किसको कहते हैं ? **दम्भो दर्पोऽभिमानश्च** । दम्भ करना । दम्भ क्या चीज है ?

वेशभाषाक्रियाचातुर्यादिभिः स्वमहत्त्वप्रकटनं दम्भः ।

वेश-भाषा और क्रिया की चतुरता से दूसरे के सामने अपना महत्त्व प्रकट करना इसी का नाम दम्भ है । भागवत में आता है कि दम्भ कैसे पैदा हुआ ?

मृषाऽधर्मस्य भार्याऽऽसीत् ।

भगवान् ब्रह्मा जी की पीठ से अधर्म की उत्पत्ति हुई । उसका मृषा

माने झूठ के साथ विवाह हो गया । मृषा और अधर्म से दम्भ और माया की उत्पत्ति हुई । हम दो हमारे दो । एक बार दम्भ मूर्तिमान् होकर ब्रह्मा जी की सभा में पहुँचा । बहुत बढ़िया तिलक लगाए, बिल्कुल सफेद कपड़े पहने, खड़ाऊ पहने, हाथ में कमण्डलु लिए, मृगछाला बगल में दबाए, खट-खट-खट-खट आवाज करते हुए पहुँचा ब्रह्मा जी की सभा में। इसके रूप को देखकर सब लोग उठ खड़े हुए । सबने कहा कि आइए बैठिए तो अधर्म ने कहा कि हम आपलोगों के बराबर में कैसे बैठ सकते हैं ? हमारे योग्य स्थान होना चाहिए । अब उसको कोई स्थान पसन्द ही न आए । सबको उसने नकार दिया । सब लोग खड़े ही थे तो ब्रह्मा जी ने कहा कि आओ बेटा! हमारी गोद में बैठ जाओ । अधर्म ने सबसे पहले ब्रह्मा जी की जाँघ में पानी छिड़का **अपवित्रः पवित्रो वा** फिर उनकी गोद में उसने मृगछाला बिछाई और बैठा । पीठ सीधी करके अकड़ कर बैठ गया । अब ब्रह्मा जी श्वाँस लें और छोड़ें तो कहने लगा कि तुम्हारी अशुद्ध श्वाँस हमारे ऊपर पड़ रही है । इसे बन्द करो । ब्रह्मा जी ने कहा कि हमारा तो दम ही घुट जाएगा । ध्यान से देखा कि कौन है तो पहचान गए । बोले कि अच्छा ! तुम अधर्म के बेटे हो । तुम्हारी जगह ब्रह्मलोक में नहीं है, तुम तीर्थों में जाओ और जहाँ ऐसे पाखण्डी लोग रहते हैं वहाँ लोगों को धोखा दो और दुष्टों के हृदय में निवास करो । तभी से यह दम्भ आसुरी सम्पत् के लोगों के पास जाता है। ऐसे लोग नाना वेश धारण करके और क्रिया की चतुरता से दूसरों के सामने अपनी महिमा बताते हैं । अभिमान करते हैं और कठोर वचन बोलते हैं । आज मैंने यह प्राप्त कर लिया, अब यह प्राप्त कर लूँगा, शत्रु को मैंने बर्बाद कर दिया और जो बचे हैं उनको भी मार डालूँगा । मेरे बराबर कौन है ? मैं सबसे बड़ा शक्तिशाली हूँ; इस तरह की भावना रखने वाले आसुरी सम्पत् के लोग होते हैं । जो लोग सत्य मार्ग से धन अर्जित करके धर्म मार्ग में लगा रहे हैं आसुरी सम्पत् के लोग उनके काम में बाधा डालते हैं । इन्हीं का नाम असुर है । इन्हीं को दैत्य और दानव कहते हैं ।

महिषासुर नाम का एक दानव हो गया है । उसकी कथा अब कल

सुनाएँगे । आज यहीं पर प्रवचन समाप्त करते हैं । थोड़ी देर भगवान् का नाम लीजिए ।

श्री राम जय राम जय जय राम
प्यारे जरा तो मन में विचारो क्या साथ लाए अरु ले चलोगे
जाता सदा साथ यही पुकारो गोविन्द दामोदर माधवेति
गोविन्द दामोदर माधवेति हे कृष्ण हे यादव हे सखेति
श्रीकृष्ण गोविन्द हरे मुरारे हे नाथ नारायण वासुदेव
श्रीकृष्ण गोविन्द हरे मुरारे हे नाथ नारायण वासुदेव
धर्म की जय हो । अधर्म का नाश हो ।
प्राणियों में सद्भावना हो । विश्व का कल्याण हो ।
गोमाता की जय हो । गोहत्या बन्द हो ।
हर हर महादेव ।

पञ्चम दिवस

भगवती सबका कल्याण करती हैं

समुपस्थित विद्वद्वृन्द ! देवियो ! सज्जनो !

आप देवी भागवत की उस परम पवित्र कथा का श्रवण कर रहे हैं जिसके श्रवण मात्र से मनुष्य अपने परम पुरुषार्थ को प्राप्त कर सकता है । देवी भागवत की कथाओं से यह समझ में आता है कि भगवती की आराधना से मनुष्य को भोग-मोक्ष दोनों पुरुषार्थों की प्राप्ति होती है । आप देखें कि एक राजा सुरथ था और दूसरा समाधि नाम का वैश्य था । राजा सुरथ और समाधि वैश्य की कथा दुर्गा सप्तशती में आती है और देवी भागवत में भी आती है । राजा सुरथ का एक बार कोलाविध्वंसी शत्रुओं से संग्राम हो गया। कोला कहते हैं शूकर को और उसका जो विध्वंस न करे वह कोलाविध्वंसी। ये कौन हैं आप समझ सकते हैं । म्लेच्छ हैं । म्लेच्छों से राजा सुरथ का संग्राम हुआ और संयोग की बात है कि संग्राम में म्लेच्छ विजयी हो गए और राजा सुरथ पराजित हो गया । किसी प्रकार से म्लेच्छों को कर देकर राजा ने अपना राज्य बचाया । राजा को निर्बल समझ कर मन्त्री उनकी उपेक्षा करने लगे । वे समझ गए कि राजा में शक्ति तो है ही नहीं अतः आज्ञा का उल्लंघन करने लगे । मन्त्रियों ने मिलकर इस प्रकार का षड्यन्त्र किया और सोचने लगे कि राजा को हटाकर हम स्वयं राजा हो जाएँ । ऐसी परिस्थिति आ गई।

आज भी ऐसी ही परिस्थिति है । आपने सुना होगा कि कर्णाटक राज्य की सरकार वहाँ के धर्मस्थानों को अपने अधिकार में लेना चाहती है। आप सोचिए कि उन स्थानों में जगद्गुरु शङ्कराचार्य बैठे हैं, मध्वाचार्य बैठे हैं, रामानुज सम्प्रदाय के आचार्य बैठे हैं । वहाँ पर बहुत से लोग घर द्वार छोड़कर अपने माता-पिता से नाता तोड़कर मठों में बैठकर धर्म का प्रचार कर रहे हैं।

अब हम हिन्दुओं के लिए धर्म प्रचार का एकमात्र माध्यम हमारे धार्मिक मठ बचे हैं । मन्दिर बचे हैं जहाँ से हम अपने सनातन धर्म का प्रचार करते हैं और अपना सन्देश जनता तक पहुँचा सकते हैं ।

स्थानं प्रधानं न बलं प्रधानम् ।

जब स्थान रहेगा तो बल भी रहेगा । अब जो मुसलमान हैं उनको अपने धर्म का प्रचार करने के लिए दूसरे देशों से रुपया आता है । उनके पास तेल का भण्डार है । रुपयों की कोई कमी नहीं है । उनके प्रत्येक मस्जिद में लाउड स्पीकर लग गया है । पहले घरों में फकीर जो आते थे भिक्षा लेने आज उनके बंगले बन गए । वे अपने धर्म का प्रचार कर रहे हैं। ईसाई लोगों के लिए कुछ ऐसे ईसाई देश हैं जहाँ बजट में भारत के लोगों को ईसाई बनाने के लिए रूपये दिए जाते हैं । वे उन रूपयों को लेकर यहाँ आ गए हैं और अपना प्रचार कर रहे हैं । हमारे पास क्या है ? भारत के संविधान में यह कहा गया है कि यहाँ के प्रत्येक नागरिक को अपने धर्म के प्रचार करने की सुविधा रहेगी । हमारे पास सुविधा क्या है ? सम्पत्ति के नाम पर यही मठ-मन्दिर बचे हुए हैं । अब उनको भी सरकार अपने हाथ में ले लेगी तो क्या होगा ? सरकार कौन है ? आप देखते हैं कि या तो मिनिस्टर हैं या सरकारी कर्मचारी हैं । उनकी कथाएँ आप रोज अखबारों में पढ़ते ही हैं। आप टेलीवीजन में देखते हैं कि भ्रष्टाचार से भरे हुए हैं । वे रूपया खींच रहे हैं और अपने परिवार में भर रहे हैं । उनके हाथ में यदि हमारे मन्दिर चले जायेंगे तो उस सम्पत्ति का उपयोग कहाँ होगा ? वे भी भ्रष्टाचार के केन्द्र बन जायेंगे । राजीव गाँधी जब प्रधानमन्त्री थे तब उनसे हमने कहा था कि हम शङ्कराचार्य हैं । घर द्वार छोड़कर मठ का संचालन कर रहे हैं । हमारे ऊपर आप लोगों ने चैरिटी कमिश्नर लगा दिया । चैरिटी कमिश्नर को अपने बाल-बच्चों का पालन करना है । हमें तो नहीं करना है । अब वो हमसे हिसाब माँगता है । आपने कितने महात्माओं को भोजन कराया ? उनके लिए कितनी सब्जी खरीदी, कितना आटा खरीदा ? सबको लिखो हम देखेंगे । अभी गुजरात की सरकार ने यहाँ तक कर दिया था कि जो भी महन्थ ठीक से हिसाब नहीं दे सकेगा उसे चैरिटी कमिश्नर निकाल सकता है । चैरिटी

कमिश्नर के ऑफिस का खर्च मठ-मन्दिरों को देना पड़ेगा । जो भी खर्च नहीं देगा उसके ऊपर चैरिटी कमिश्नर जुर्माना लगा सकेगा और जेल भेजेगा । हमको जब पता लगा तो हमने इसका घोर विरोध किया । वहाँ के मुख्यमन्त्री श्री नरेन्द्र मोदी को हमने कहा कि यह क्या कर रहे हो ? जनता हमारे साथ हो गई और परिणाम यह हुआ कि मोदी जी को फिर से विधानसभा बुलाकर एक दिन में उस विधेयक को रद्द कराना पड़ा। हम लोगों को यह आशंका है कि पहले ये कर्णाटक में करेंगे और फिर यह मध्य प्रदेश में भी आ जाएगा। उत्तर प्रदेश में भी आ जाएगा । इसलिए पहले से ही भगवती से प्रार्थना करनी चाहिए कि इनको सद्‌बुद्धि दो । धर्म की रक्षा के लिए अब एकमात्र साधन ये मठ-मन्दिर ही बचे हैं । कहने का अभिप्राय यह है कि जब शासक कमजोर हो जाता है और उसको वोट बैंक की जरूरत पड़ती है तो ऐसे विधेयक लाता है, ऐसे कानून बनाता है जिससे जनता को भले कष्ट हो पर जो उसको वोट देने वाले हैं उनकी इच्छा पूरी हो ।

यही बात राजा सुरथ के समय में भी हुई । यह भी सम्भावना हुई कि एक दिन वे लोग राजा सुरथ को मारकर उसका राज्य हड़प लेंगे । पता चलने पर राजा सुरथ वहाँ से भागकर जंगल में चला गया । इधर एक वैश्य जिसका नाम समाधि था वह करोड़पति था । उसके बेटे सोचने लगे कि कब पिताजी मरें तो हम इनका धन हड़प लें । बड़ी मुश्किल होती है । धन ऐसी चीज है कि उसकी स्त्री भी बेटों के पक्ष में हो गई । उन्होंने देखा कि हमारा अब परिवार में कोई नहीं है तो वह भी घर से निकल कर जंगल में चला गया। दोनों आपस में सुमेधा ऋषि के आश्रम में मिले । वहाँ जाकर उन्होंने अपना दुःख सुनाया । राजा सुरत ने कहा कि महाराज ! हम राज्य से च्युत हो गए हैं लेकिन अभी भी हमको राज्य की याद आ रही है । हमने जो कोष इकट्ठा किया था अब वह सब खर्च हो जाएगा । मेरा एक हाथी था जिससे सदा मद निकलता रहता था । पता नहीं अब उसको भोजन मिलता होगा कि नहीं मिलता होगा ? उसकी चिन्ता हमको सता रही है । समाधि वैश्य बोला कि हमको घर वालों ने निकाल दिया । लेकिन अभी भी हमको उनकी याद आ रही है । कहीं हमारे बेटे ऐसा न करें कि हमारा इकट्ठा किया हुआ सब धन

खर्च हो जाए और फिर से दरिद्रता आ जाए । क्या होगा हमारे बिना? हम तो यहाँ आ गए फिर अब ऐसा भाव क्यों आ रहा है ? ऋषि ने कहा कि तुम्हारे मन में जो भाव आ रहे हैं ये सब भगवान् की माया है —

ज्ञानिनामपि चेतांसि देवी भगवती हि सा ।
बलादाकृष्य मोहाय महामाया प्रयच्छति ॥

यह माया बड़े-बड़े ज्ञानियों के चित्त को भी मोह में डाल देती है । माया ऐसी प्रबल होती है कि अच्छे-अच्छे समझदार लोग भी मोहित हो जाते हैं । कहते हैं कि बरियाँई माने जबरदस्ती माया मनुष्य का मन संसार की ओर खींचती है । उसी माया के द्वारा संसार मोहित है । वह जगत् की पालिनी शक्ति है । उसकी आराधना के बिना आपके मोह की निवृत्ति नहीं हो सकती। उस माया की तुम आराधना करो । राजा सुरत और समाधि वैश्य ने तपस्या की । भगवती के चरित्र का श्रवण किया ।

रम्भ-करम्भ दो दानव थे । दनु नाम की कश्यप की पत्नी के ये दोनों बेटे थे । स्वाभाविक रूप से माता के पक्ष में थे । माता का भी असर पड़ता है बेटों पर । पिता कश्यप तो ठीक थे पर माता दनु दुष्टा थी । रम्भ-करम्भ तपस्या करने चले गए । एक पञ्चनद नाम की नदी में खड़ा होकर तपस्या करने लगा और दूसरा अग्नि की आराधना करने लगा । रम्भ को इन्द्र ने मगरमच्छ का रूप धारण करके पानी में खींचा और उसे पानी में डुबाकर मार डाला । करम्भ अपने शरीर का मांस काट-काट कर अग्नि में हवन करता था। जब अपने एक हाथ से अपने बाल पकड़ कर तलवार से सिर ही काटने लगा तब अग्निदेव ने प्रकट होकर कहा कि क्या कर रहे हो? आत्महत्या सबसे बड़ा पाप है । मनुष्य को आत्महत्या नहीं करनी चाहिए। मनुष्य के सामने यदि कोई सबसे बड़ा पाप है तो वह है आत्महत्या । मनुष्य कोई भी दूसरे पाप करके उसका प्रायश्चित्त करके मुक्त हो सकता है । गौहत्या हो जाए, सुरापान हो जाए, चोरी हो जाए तो इन सबका शास्त्रों ने प्रायश्चित्त बताया है जिसको करके आप उस पाप से मुक्त हो सकते हैं । आपको नरक न जाना पड़े इसके लिए प्रायश्चित्त हैं लेकिन जो आत्महत्या कर लेगा वह प्रायश्चित्त कैसे करेगा ? इसीलिए आत्महत्या को घोर पाप माना जाता है । इसलिए तुम

यह घोर पाप मत करो। उसने कहा कि आप हमें वरदान दीजिए। अग्निदेव बोले कि क्या वरदान चाहते हो ? तो वह बोला कि हम किसी से न मारे जाएँ ऐसा वरदान दीजिए । हमारी मृत्यु न हो । अग्निदेव ने कहा जो जन्म लेता है वह मरता ही है । भगवान् श्रीकृष्ण ने श्रीमद्भगवद्गीता में कहा है कि —

जातस्य हि ध्रुवो मृत्युर्ध्रुवं जन्म मृतस्य च ।
तस्मादपरिहार्येऽर्थे न त्वं शोचितुमर्हसि ॥

जो जन्मा है उसकी मृत्यु सुनिश्चित है और जिसकी मृत्यु हुई है उसका जन्म भी सुनिश्चित है । यह तो अनिवार्य है । इसलिए ऐसा नहीं हो सकता कि तुम मरो ही न, हाँ पर कोई निमित्त बना लो । उसने कहा कि तब ऐसा कीजिए कि हम न देवता से, न मनुष्य से, न पुरुष से, न ब्रह्मा से, न विष्णु से और न ही महेश से मारे जाएँ । आप कहते हैं कि निमित्त बना लो तो ऐसा कीजिए कि हम स्त्री से मरें । उसने सोचा कि हमें कोई स्त्री क्या मार सकती है ? भगवान् ने कहा कि ठीक है । तुम्हारा पुत्र बलवान् होगा पर तुम तो स्त्री से मरोगे । इसी करम्भ का पुत्र हुआ महिषासुर । किसी महिषी में करम्भ के आसक्त हो जाने से यह उत्पन्न हुआ था । ये महिष के रूप में माने भैंस के रूप में रहना पसन्द करता था । था तो दैत्य इसलिए अपनी इच्छा के अनुसार रूप बदल लेता था । इसने भी तपस्या की । तपस्या करके बलवान् हो गया । अब प्रश्न यह आता है कि देवता भी तपस्या करके देवपद प्राप्त करते हैं । कल हमने आपको बताया था कि यज्ञ-यागादि करके उन्हें देवपद की प्राप्ति होती है और ये दैत्य भी तपस्या करते हैं । दोनों में फिर अन्तर क्या है ? देवताओं को जो शक्ति प्राप्त हुई वह तपस्या से प्राप्त हुई। दैत्यों द्वारा की गई तपस्या शुद्ध नहीं है । इस तपस्या के पीछे कामना है, द्वेष है, वासना है । जबकि तपस्या तो इन वासनाओं से मुक्त होने के लिए किया जाना चाहिए । हमारे वेदों में आता है —

तमेतं ब्राह्मणाः विविदिषन्ति यज्ञेन दानेन तपसाऽनाशकेन ।

ब्राह्मण अन्य वर्णों का उपलक्षण हैं । यज्ञ, दान और तप से; ऐसे तप से जिससे अपने शरीर का नाश न हो परमात्मा को प्राप्त किया जा सकता है । यदि मनुष्य स्वर्ग की कामना से यज्ञ, दान और तप करता है तो स्वर्ग

की प्राप्ति होती है । निष्काम भाव से यदि परमात्मा को प्राप्त करना चाहता है तो चित्त शुद्धि के द्वारा उसको अपने परमात्मा के स्वरूप का साक्षात्कार हो जाता है । प्रश्न यह है कि इनकी तपस्या कैसी है ? यह तमोगुणी तपस्या है। सार्थक तपस्या नहीं है । श्रीमद्भगवद्गीता में कहा गया है —

कर्शयन्तः शरीरस्थं भूतग्राममचेतसः ।
मां चैवान्तःशरीरस्थं तान्विद्ध्यासुरनिश्चयान् ॥

तमोगुणी तपस्या वह है जो शरीर को कष्ट देकर की जाती है । जिस शरीर के भीतर मैं बैठा हूँ । मुझे भी जिससे कष्ट होता है ऐसी तपस्या तामसी तपस्या है । शरीर को कष्ट देना आवश्यक नहीं है और फिर शरीर को भी कष्ट दें तो अच्छी भावना से दें । यदि आप परोपकार के लिए अपना शरीर देते हैं जैसे दधीचि ने दिया और दूसरे लोगों ने दिया, शिवि ने दिया । परोपकार की बुद्धि से दिया तब तो कोई बात है । लेकिन आपने दूसरों को कष्ट देने के लिए तप किया । जगत् में विजयी हो जाएँ इसलिए तप किया अथवा सबका स्वत्त्व, सबका अधिकार हड़प लें इस दुर्भावना से तप किया तो वह तपस्या तमोगुणी तपस्या है और ऐसी तपस्या दोषपूर्ण मानी जाती है।

एक आपको मनोरंजक बात सुनाएँ । आपने परमपूज्य ब्रह्मलीन स्वामी श्री करपात्री जी महाराज का नाम सुना ही होगा । एक बार वे गंगा के किनारे भ्रमण कर रहे थे । एक स्थान पर बैठे तो बहुत से लोग उनके दर्शन के लिए आए । उनमें एक नास्तिक भी आ गया । वह भगवान् श्रीराम की निन्दा महाराज के मुख से करवाना चाहता था । चालाक था । उसने हाथ जोड़कर बड़ी नम्रता से पूछा । जो दुष्ट होते हैं वे बहुत चालाक होते हैं और अति विनम्र होने का ढोंग करते हैं । कहते हैं —

लम्ब दण्डवत मीठी बानी । दगाबाजों की यही निशानी ।

बड़ी नम्रता से कहने लगा कि महाराज ! एक प्रश्न है । आप बताइए कि जो यज्ञ में बाधा डालते हैं वह कौन होते हैं । महाराज ने कहा कि वह राक्षस होते हैं । तो बोला महाराज ! मेघनाद यज्ञ कर रहा था तो रामचन्द्र जी ने मेघनाद के यज्ञ में बाधा डाल दी । अब वे कौन हुए ? ये उसने पूछ दिया । अब वे चौंके कि यह तो बहुत ही चालाक है । हमारे मुख से हमारी

ही बात उल्टी करवाना चाहता है । उन्होंने बताया कि एक श्लोक है —

तपो न कल्कोऽध्ययनं न कल्कः
स्वाभाविको वेदविधिर्न कल्कः ।
प्रसह्य वित्ताहरणं न कल्कः
तान्येव भावोपहितानि कल्कः ॥

अर्थात् तप करना कल्क नहीं माने दोष नहीं है, वेदों का अध्ययन करना दोष नहीं है, वेदविधि जो यज्ञ की विधि है वह भी कल्क नहीं है और दूसरों का धन हरण कर लेना भी कल्क नहीं है । भाव यदि दूषित है तो वही कर्म दूषित हो जाता है । मेघनाद इसलिए यज्ञ कर रहा था कि हम अजर-अमर हो जाएँ । उसने सोचा था कि निकुम्भला देवी के प्रसाद से जब हम अजर-अमर हो जाएँगे तो दूसरों की स्त्रियों का अपहरण करते रहेंगे । जैसा कि राक्षस लोग करते थे । जब हनुमान जी लंका गए तो वहाँ उन्होंने वहाँ देखा —

नर नाग सुर गंधर्ब कन्या रूप मुनि मन मोहहीं ।

देवताओं की कन्या, नागों की कन्या, मनुष्यों की कन्या और जो भी सुन्दरी कन्या होती थी उसको राक्षस लोग पकड़कर लंका में ले आते थे। लंका में कोई सौ योजन समुद्र पार करके जाए तो वह स्थान तो राक्षसों से घिरा हुआ है । वहाँ से कोई कैसे अपनी बेटी का उद्धार कर लाए ? इस तरह से दूसरे की स्त्रियों का अपहरण करना, यज्ञ के स्थान पर राक्षस बनकर पहुँच जाना यही उनलोगों का काम था । रावण ने अपने अनुचरों से कहा था —

द्विजभोजन मख होम सराधा । सब कै जाइ करहु तुम्ह बाधा॥

जहाँ ब्राह्मणों का भोजन होता हो, होम होता हो, श्राद्ध होता हो तुम वहाँ पर पहुँचो और बाधा डाल दो । ये लोग यही काम करते थे । मारीच और सुबाहु ऋषि-मुनियों के यज्ञ में बाधा कैसे डालते थे ? पहले तो वे बाहर रहते थे । लेकिन अगर उनके मन्त्र में कोई त्रुटि हुई, विधि-विधान में कोई न्यूनता रह गई तो वे हावी हो जाते थे ।

छिद्रं हि मृगयन्त्येते विद्वान्सो ब्रह्मराक्षसाः ।

वे लोग यज्ञ कुण्ड में हड्डी, रक्त और मांस डाल देते थे । इस तरह

से ये लोग काम करते रहें और इनकी मृत्यु न हो इसके लिए ये यज्ञ कर रहे थे । यदि यज्ञ पूरा हो जाता तो अन्याय का अन्त न होता । अन्याय का अन्त हो इसलिए भगवान् ने मेघनाद के यज्ञ में बाधा डाल दी । बोले बताओ उचित किया कि नहीं किया । तो बोला कि उचित किया ।

कहने का अभिप्राय यह है कि इन राक्षसों के तप का उद्देश्य दूषित था । अपने को अजर-अमर बनाकर, सबका अधिकार छीनकर, केवल सुन्दर सुख भोगने के लिए हिरण्यकशिपु ने तपस्या की । इतनी लम्बी तपस्या करने के पीछे भी दूषित भावना रही । इसी तरह से रावण ने तपस्या की । जब ब्रह्मा जी ने कहा कि वरदान माँगो तो उसने भी यही वरदान माँगा—

हम काहू के मरहिं न मारे । बानर मनुज जाति दुइ बारे ॥

उसने सोचा कि वानर और मनुष्य तो हमारे आहार हैं । ये दोनों हमको क्या मारेंगे ? इस तरह की तपस्या करने वालों की तपस्या सात्त्विक नहीं है । सात्त्विक तपस्या क्या है ? कहा गया है —

मनः प्रसादः सौम्यत्त्वं मौनमात्मविनिग्रहः ।
भावसंशुद्धिरित्येतत्तपो मानसमुच्यते ॥

मन को सदा शुद्ध रखना, मौन माने निःसंकल्प रहना, अपने अन्तःकरण और इन्द्रियों को वश में करना, प्राणायाम के द्वारा प्राणों का निग्रह करना, मन के भावों को शुद्ध रखना । यही सात्त्विक तप है । जिसमें फल की आकांक्षा कुछ भी न हो । जो अपने हृदय को शुद्ध करने के लिए किया जाए वह तप ही तप होता है । इस तरह के जो राक्षस और दैत्य-दानव थे वे संसार को कष्ट देने के लिए तपस्या करते थे और अपनी तपस्या से जिसकी आराधना करते थे उसको वरदान देने के लिए विवश कर देते थे । इस तरह से महिषासुर ने बलवान् होकर सबको ललकारा । देवताओं को स्वर्ग से निकालकर स्वयं वहाँ पर बैठने के लिए दैत्यों की एक सेना लेकर पहुँच गया । सब देवताओं ने उसका सामना किया । यहाँ तक कि ब्रह्मा, विष्णु और रुद्र आ गए । सबने मिलकर महिषासुर को हराना चाहा लेकिन वह किसी से नहीं हारा । उसे वरदान था । अन्तोगत्वा सब इकट्ठे होकर बैठे और सोचने लगे कि क्या करें ? फिर सब देवताओं के शरीर से तेज निकला

और सबका तेज एकत्र हो गया । ब्रह्मा का, विष्णु का, रुद्र का, इन्द्र का, चन्द्र का, यम का, वरुण का, कुबेर का । सबने अपना-अपना तेज दिया। तब उन सबके तेज से एक नारी का स्वरूप बना । उसको इन सबने अपने सभी आयुध दिए । अपने अस्त्र-शस्त्र प्रदान किए । वह बड़ी सुन्दरी स्त्री के रूप में जब प्रकट हुईं और उसने अट्टहास किया । उस अट्टहास की ध्वनि को जब महिषासुर ने सुना तो पूछा कि ये किसकी ध्वनि है ? दूतों को भेजा पता करने तो दूतों ने बताया कि एक बड़ी सुन्दरी स्त्री है, वही अट्टहास कर रही है । महिषासुर ने कहा कि यदि बड़ी सुन्दरी है तो लेकर आओ । हम उसको अपनी स्त्री बनायेंगे । दूत आया और उसने जगदम्बा को समझाया तब देवी बोलीं कि हमें किसी से ब्याह करने की आवश्यकता नहीं है । बहुत समझाया पर देवी नहीं मानीं । फिर उसने मण्डोदरी का आख्यान सुनाया।

एक राजा की कन्या मण्डोदरी थी । बड़ी सुन्दरी थी । जब विवाह के योग्य हुई तो पिता ने उसका विवाह करना चाहा । उसने कहा कि हम विवाह नहीं करेंगे । विवाह करने से ससुराल जाना पड़ेगा । ससुराल में सास की सेवा करनी पड़ेगी । हम दासी नहीं बनना चाहते । हमारे पति ने यदि किसी दूसरी स्त्री को बुला लिया तो सौत सामने आ जाएगी । उसके कारण हमको कष्ट होगा । हम ऐसे ही अच्छे हैं हम विवाह नहीं करेंगे । खूब समझाया, नहीं मानी । और भी दूसरा राजा आया । उसने भी अपनी इच्छा प्रकट की । उसकी बात भी नहीं मानी । हुआ यह कि उसकी छोटी बहन का स्वयंवर हुआ । उसका तो विवाह हो गया पर उसी स्वयंवर में एक दुष्ट राजा आया था । अब मण्डोदरी ने कहा कि मेरा भी विवाह कर दो । अन्त में उसने उस दुष्ट राजा के साथ विवाह किया । वहाँ जाकर उसने दुःख पाया। इसलिए अच्छा हो कि तुम मेरे साथ विवाह कर लो । दूत के द्वारा समझाया लेकिन जब जगदम्बा नहीं मानीं तब वह युद्ध करने के लिए आया और भगवती के साथ महिषासुर का भयंकर युद्ध हुआ । उसके जितने अनुचर थे सब मारे गए। अन्त में भगवती ने उसे सिंहवाहिनी बनकर मारा। महिषासुर का वध हुआ और उसकी आत्मा भगवती के चरणों में समा गई। फिर देवताओं ने जगदम्बा की स्तुति की । उन्होंने कहा कि माँ आप परम करुणामयी हैं । आप

असुरों को मारती हैं तो इससे लोगों को यह समझ में आता है कि आपके हृदय में करुणा नहीं है । लेकिन हम यह मानते हैं कि आपके हृदय में इन दुष्ट दैत्यों के प्रति भी दया है —

> दृष्ट्वैव किं न भवती प्रकरोति भस्म
> सर्वान्सुरानरिषु यत्प्रहिणोसि शस्त्रम् ।
> लोकान्प्रयातु रिपवोऽपि हि शस्त्रपूता
> इत्थं मतिर्भवति तेष्वपि तेऽति साध्वी ॥

माँ ! जब ये दैत्य तुम्हारे सामने आते हैं तब तुम इन्हें अपनी आँखों से ही देखकर भस्म क्यों नहीं कर देती ? क्यों इनको शस्त्र से मारती हो ? बात क्या है कि आप जानती हैं कि क्षत्रिय जब युद्ध में शस्त्र से मारा जाता है तो उसको दिव्य लोक की प्राप्ति होती है । आप सोचती हैं कि यह ऐसे ही जीवित रहेगा तो दिव्य लोक की प्राप्ति नहीं होगी । जब मारा जाएगा तभी दिव्य लोक में जाकर उन्हीं सुखों का भोग करेगा जो जबरदस्ती यहाँ भोगना चाहता था । उनके ऊपर भी आपकी कृपा है ।

इस तरह से देवताओं ने जगदम्बा की आराधना की । उसके पश्चात् शुम्भ-निशुम्भ; इन दो दैत्यों की कथा आती है । वे भी भगवती के द्वारा मारे जाते हैं । सुरथ राजा और समाधि वैश्य परमदेवीसूक्त का पाठ करते हुए भगवती की आराधना करते हैं । सुरथ को राज्य की प्राप्ति होती है और समाधि वैश्य को मोक्ष की प्राप्ति होती है । माने भगवती दोनों दे सकती हैं। जो मोक्ष चाहता है उसको मोक्ष देती हैं और जो भोग चाहता है उसको भोग देती हैं ।

इसके बाद एक अद्‌भुत कथा आती है । भगवान् की माया कैसी विलक्षण है ? इसके लिए नारद जी की कथा आती है । नारद जी ने भगवान् विष्णु से कहा कि भगवान् ! हम आपकी माया देखना चाहते हैं । भगवान् ने कहा कि वन में चले जाओ । नारद जी वन में गए । वहाँ एक सरोवर था। उस सरोवर में उन्होंने जैसे ही स्नान किया तो वे नारद से नारदी बन गए । सुन्दरी स्त्री बन गए । वहाँ एक राजा सीरध्वज आया । उसने इनको देखकर इन्हें अपनी पटरानी बना लिया । उससे कई सन्तानें उत्पन्न हुई । नारदी रानी बन गईं । बढ़ियाँ कपड़े पहने, चाभी का गुच्छा अपने बगल में लटकाए, मुख में पान लिए

दासियों से सेवा कराने लगी । कई बाल-बच्चे पैदा हो गए। बड़े आनन्द में रह रही थी नारदी । इतने में किसी दूसरे राजा ने उस राज्य में आक्रमण कर दिया। राजा और उसके पुत्र सब के सब मारे गए । अन्त में नारदी विरह से अत्यन्त व्याकुल हुई । सती होने को तैयार हुई । तब भगवान् विष्णु ने प्रकट होकर इनको समझाया तुम नारद हो । तुम यहाँ कहाँ पड़े हो ?

यही कथा दूसरे स्थानों पर भी आती है कि एक बार नारद जी ने भगवान् श्रीकृष्ण से कहा कि हम आपकी माया देखना चाहते हैं । भगवान् ने कहा कि चलो । भगवान् एक रथ में बैठ गए और जंगल में ले गए । बोले नारद जी हमको प्यास लगी है, जरा पानी लाओ । नारद जी पानी लेने गए और एक सरोवर में जैसे ही सिर झुकाया तो गिर पड़े और ये नारी बन गए। नारी बन गए तो किसी राजा के यहाँ रानी बने, सन्तानें हुईं, राज्य पर आक्रमण हुआ । राजा मारा गया तो मरने के लिए दूसरे सरोवर में कूद पड़े। वह सरोवर ऐसा था कि नारी से नर हो गए । भगवान् ने उनको पानी लेने के लिए भेजा था । उनको याद आया कि हम तो पानी लेने के लिए आए थे । कमण्डलु में पानी भरकर नारद जी वापस आए तो भगवान् ने कहा कि बहुत जल्दी आ गए । नारद जी बोले जल्दी कैसे ? हमारे तो बाल-बच्चे भी हो गए । ये भगवान् की माया है जो सबको मोहित किए हुए हैं। उनकी कृपा के बिना कोई भी उससे मुक्त नहीं हो सकता । इतना ही कहकर आज का प्रवचन पूर्ण करते हैं ।

श्री राम जय राम जय जय राम

प्यारे जरा तो मन में विचारो क्या साथ लाए अरु ले चलोगे
जाता सदा साथ यही पुकारो गोविन्द दामोदर माधवेति
गोविन्द दामोदर माधवेति हे कृष्ण हे यादव हे सखेति
श्रीकृष्ण गोविन्द हरे मुरारे हे नाथ नारायण वासुदेव
श्रीकृष्ण गोविन्द हरे मुरारे हे नाथ नारायण वासुदेव

धर्म की जय हो । अधर्म का नाश हो ।
प्राणियों में सद्भावना हो । विश्व का कल्याण हो ।
गोमाता की जय हो । गोहत्या बन्द हो ।
हर हर महादेव ।

षष्ठ दिवस

भगवती की पूजा से इच्छित फल की प्राप्ति होती है

समुपस्थित विद्वद्वृन्द ! देवियो ! सज्जनो !

श्रीमद्देवीभागवत महापुराण की कथा आप सब श्रवण कर रहे हैं । इस पुराण में स्थान-स्थान पर कैसे उनकी भक्तों पर कृपा बरसती है ये बताया गया है । एक शर्याति नाम के राजा इक्ष्वाकु वंश में हुए । उनकी कन्या का नाम था सुकन्या । एक बार वे आखेट खेलने वन में गए । उनकी कन्या भी साथ में गई थी । उधर वे आखेट खेल रहे थे और इधर कन्या अपनी सहेलियों के साथ वन में भ्रमण कर रही थी । वहाँ च्यवन ऋषि तपस्या में निरत थे । वे इतने अन्तर्मुख हो गए थे कि उनके शरीर में दीमक लग गया था । सारा शरीर दीमक से ढँक गया था केवल आँखें दिख रही थी । सुकन्या ने काँटा निकाला और उनकी आँख फोड़ने के लिए गई । वे कहते रहे कि हम तपस्या कर रहे हैं ऐसा मत करो । लेकिन उसने सुना नहीं और आँख में काँटा घुसा दिया । अब ऋषि अन्धे हो गए । अब परिणाम यह हुआ कि उस ऋषि के कोप से राजा और उसकी सेना का मल-मूत्र रुक गया। बहुत परेशान हुए । महात्मा जी से प्रार्थना की कि कन्या से भूल हो गई, दया कीजिए । कन्या को भी भूल का एहसास हुआ । राजा ने कहा कि अपराध क्षमा हो इसका उपाय आप बताइए । ऋषि बोले कि इस कन्या को हमें अर्पित कर दो । उन्होंने च्यवन ऋषि को अपनी कन्या समर्पित कर दी। सुकन्या अपने पति की सेवा करने लगी । जब सबेरा होता तो उनको स्नान कराती, सन्ध्या के लिए कुश और जो भी सामग्री की आवश्यकता होती थी सब लाती थी । वन से कन्दमूल फल लाती थी । उनको भोजन कराती थी। पंखा झलती थी । सुन्दर शय्या में सुलाती थी । मृगचर्म पहनाती थी । बड़ी

तत्परता से उसने अपने पति की सेवा की ।

एक दिन की बात है कि सूर्यपुत्र अश्विनी कुमार वहाँ आए । दो भाई हैं पर एक नाम से ही कहे जाते हैं । उन दोनों ने इस सुकन्या को देखा । इसके रूप लावण्य को देखकर मुग्ध हो गए । पूछा कि किसकी पुत्री हो ? यहाँ कैसे रह रही हो ? उसने कहा हम राजा शर्याति की कन्या है और यहाँ हमारे पति च्यवन ऋषि के साथ रहते हैं । हम उनकी सेवा करते हैं । वे आँखों से अन्धे हैं । उन्होंने कहा कि तुम अन्धे के पीछे क्यों पड़ी हो ? क्या सुख मिलेगा ? हमारी स्त्री बन जाओ तो तुम्हें स्वर्ग का सुख मिलेगा । तुम विमान में बैठकर घूमोगी । सब प्रकार के भोग तुमको सुलभ हो जायेंगे । सुकन्या ने कहा कि यह सर्वथा अनुचित है । नारी के लिए पतिव्रत धर्म ही उत्तम है। मेरा पति चाहे जैसा हो मैं उसी की सेवा करूँगी । मैं किसी और को नहीं देख सकती ।

पतिव्रत धर्म का बहुत बड़ा महत्त्व माना गया है । रामचरितमानस में भी आता है कि जगत् में पतिव्रता तीन प्रकार की होती हैं—

उत्तम के अस बस मन माहीं । सपनेहुँ आन पुरुष जग नाहीं॥

उत्तम पतिव्रता वह है जो दूसरे पुरुष का अस्तित्त्व ही स्वीकार नहीं करती । यदि नर है तो वह मेरा पुरुष है और कोई दूसरा पुरुष है ही नहीं।

मध्यम परपति देखइ कैसे । भ्राता पिता पुत्र निज जैसे ॥

मध्यम पतिव्रता अपने से बड़े को पिता, बराबर वाले को भ्राता और छोटे को पुत्र के समान देखकर अपने शील की रक्षा करती है ।

धर्म बिचारि समुझि कुल रहई । सो निकृष्ट त्रिय अस श्रुति कहई ॥

जो अपने सनातन धर्म का विचार करके कि कहीं हमारे कुल में कलंक न लग जाए इस प्रकार के विचार से जो अपने शील की रक्षा करती है वह निकृष्ट है ।

पति बंचक परपति रति करई । रौरव नरक कल्प सत परई ॥
बृद्ध रोगबस जड़ धनहीना । अंध बधिर क्रोधी अति दीना ॥
ऐसेहु पति कर किएँ अपमाना । नारि पाव जमपुर दुख नाना ।

उस सुकन्या ने कहा कि मैं अपने अन्धे पति को छोड़कर अन्य

किसी की आराधना नहीं कर सकती । अश्विनी कुमारों ने कहा कि तुम्हारा पति अन्धा है, वृद्ध है, हम देवताओं के वैद्य हैं । हम तुम्हारे पति को नेत्रयुक्त और युवा बना देंगे । हम तीनों में से तुम जिसको चाहो उसको वरण कर लेना। उसने कहा कि हम अपने पति से पूछेंगे । सुकन्या ने च्यवन ऋषि से पूछा कि उन्होंने यह प्रस्ताव रखा है कि हम तुम्हारे पति को युवा और नेत्रयुक्त बना देंगे लेकिन हम भी उनके साथ रहेंगे । हम तीनों में से तुम जिसको चाहो अपना पति बना लेना । ऋषि ने कहा कि तुम उनका प्रस्ताव स्वीकार कर लो। अब अश्विनी कुमार आए । उन्होंने एक सरोवर बनाया और च्यवन ऋषि से कहा कि आप इसमें स्नान कीजिए और वे दोनों भी स्नान करने के लिए उतरे । तीनों का स्वरूप एक सा हो गया । पता ही नहीं लगता था कि इनमें से च्यवन ऋषि कौन हैं और अश्विनी कुमार कौन हैं ? तीनों कहने लगे कि हमको वरण करो । तब सुकन्या ने माता राजराजेश्वरी की आराधना की और उनसे प्रार्थना की कि माँ हमें ऐसी बुद्धि दो कि हमारा धर्म न जाए । भगवती त्रिपुरसुन्दरी ने उसे ऐसी बुद्धि दी कि सुकन्या ने ठीक अपने पति के ही गले में वरमाला डाल दी । इस तरह से सुकन्या को अपने पति की पुनः प्राप्ति हुई। यह कथा श्रीमद्देवीभागवत में आती है ।

एक दूसरी कथा सुनिए । एक बार की बात है कि इन्द्र की सभा लगी थी । उसमें सब लोग बैठे थे । नारद जी गान कर रहे थे । अप्सराएँ नृत्य कर रही थीं । वशिष्ठ जी वहाँ आए । वशिष्ठ जी देवगुरु हैं । शिष्य का यह कर्त्तव्य है कि गुरु के आने पर वह बैठा न रहे । उठकर प्रणाम करे।

गुरु के आने पर क्या होता है इसको समझिए । अपने से बड़ों के आने पर मनुष्य का प्राण ऊपर जाने लगता है । ऐसे में यदि वह बैठा रहे तो उस प्राण का धक्का उसके हृदय में लगता है । उठकर न खड़ा हो तो हानि होती है । इससे आयु क्षीण होती है । इसलिए हमारी भारतीय संस्कृति कहती है कि अपने से बड़ों के आने पर उठकर खड़े हो जाना चाहिए और प्रणाम करके जब वे बैठ जाएँ तब बैठना चाहिए ।

इन्द्र ने सोचा कि हम देवताओं के राजा हैं । वशिष्ठ जी ब्राह्मण हैं। हमारे पुरोहित है । हमारे आश्रित है । हम इसके आने पर क्यों उठे ? आएँ

और बैठें अपने आसन पर । अब सामने आ जाने पर आँख तो मिलेगी ही। जब वशिष्ठ जी आए तो इन्द्र ने अपनी आँख दूसरी तरफ कर ली ।

राजसत्ता जब धर्मसत्ता की अवहेलना करती है तो उसकी पराजय हो जाती है । राजसत्ता तभी तक रहती है जब तक वह धर्मसत्ता का सम्मान करती है । राजसत्ता गौमाता की रक्षा नहीं करती है, सनातन धर्म की रक्षा नहीं करती है, गंगा माता की रक्षा नहीं करती है, ऐसे कानून बनाती है कि जिससे धार्मिक लोगों को कठिनाई हो जाए, धर्म की हानि हो जाए तो ऐसी राजसत्ता बहुत दिनों तक टिक नहीं सकती ।

वशिष्ठ जी ने सोचा कि इन्द्र इस तरह से हमारी अवहेलना कर रहा है तो उनको रोष आ गया और उन्होंने कहा कि तुम राज्य से भ्रष्ट हो जाओगे। इन्द्र शापित हो गया । इसी बीच में एक कथा दूसरी आती है कि देवताओं से ब्रह्मा जी ने कहा कि वशिष्ठ जी नाराज होकर चले गए हैं । तुम लोग बिना गुरु के रह रहे हो । दूसरा गुरु बनाकर अपना यज्ञ करो तो उन्होंने विश्वरूप नाम के एक ब्राह्मण को अपना पुरोहित बनाया । विश्वरूप ब्राह्मणों का प्रतिनिधित्त्व करने लगे लेकिन उसकी माता दैत्य कुल की थी । यज्ञ कराते थे इन्द्राय स्वाहा, वरुणाय स्वाहा, कुबेराय स्वाहा बोलता था और बीच-बीच में दैत्यों का भी नाम ले लेता था । इन्द्र को पता चला कि विश्वरूप तो दैत्यों का भी पक्ष लेता है । उसे क्रोध आया तो उसने विश्वरूप का सिर काट दिया । ब्रह्महत्या लगी इन्द्र को तब वहाँ से भागा और मानसरोवर के कंमलनाल में जाकर छिप गया कि ब्रह्महत्या हमारे ऊपर न आए ।

इसी बीच में एक नहुष नाम का राजा हुआ । विश्वामित्र जी की उस पर कृपा हो गई । उसने कहा महाराज ! हमको सदेह स्वर्ग में भेज दीजिए। विश्वामित्र जी ने उसे अपने तप के बल पर सदेह स्वर्ग भेज दिया । नहुष स्वर्ग में आया । इन्द्रासन खाली था तो बैठ गया । उसने सोचा कि हम इन्द्र बन गए लेकिन इन्द्राणी जब तक हमारे कब्जे में न आए तब तक हम इन्द्र कैसे? उसने इन्द्राणी के यहाँ खबर भेजी कि तुम हमसे मिलो । अब वह घबड़ाई कि हमारे परिचित तो यहाँ नहीं हैं । दुष्ट पिशाच आ गया है हम क्या करें ? उसने भगवती की आराधना की । भगवती ने उसको बुद्धि दी। उसने सन्देशा

भेजा कि सप्तर्षियों की पालकी में तुम बैठकर हमारे पास आओ तो हम तुमको इन्द्र मानकर अपने पति के रूप में स्वीकार करेंगे । नहुष ने सप्तर्षियों को बुलाया और कहा कि लगाओ पालकी में कन्धा । बैठ गया । कामातुर तो था ही । बोला सर्प, सर्प, सर्प माने चलो, चलो, चलो। उन सप्तर्षियों में से एक ऋषि ने कहा कि सर्प ही हो जा तू । नहुष वहाँ से गिरा और सर्प बनकर नीचे आ गया ।

कहने का अभिप्राय यह है कि जब तक गुरु प्रसन्न हों तब तक व्यक्ति का पतन नहीं होता । ब्राह्मणों के शाप से नहुष का पतन हो गया । इस बात का पता दैत्यों को लग गया कि देवताओं के गुरु उन पर प्रसन्न नहीं हैं तो वे अपनी योजना बनाने गले ।

जब शुक्राचार्य जी को पता चला कि इनके गुरु इनसे नाराज हैं तो उन्होंने कहा कि चलो इनके ऊपर आक्रमण करो । दैत्यों ने आक्रमण कर दिया । उस युद्ध में देवता पराजित हो गये । अब स्थानभ्रष्ट होकर कहाँ जाएँ? दैत्य लोग खोजने में रहते थे कि इन्द्र मिले तो उसे मारें । अन्त में भागते-भागते ब्रह्मा जी के पास गए । उनसे कहा कि हमारे ऊपर बड़ी विपत्ति है। बताइए हम क्या करें ? ब्रह्मा जी ने कहा कि तुम भगवती की आराधना-उपासना करो । ब्रह्महत्या तो लग ही गई थी पर भगवती की आराधना करने से उसे पुनः अपने पद की प्राप्ति हो गई ।

इधर विश्वरूप के पिता त्वष्टा ने एक अभिचारात्मक यज्ञ किया । उस यज्ञ में उसने कहा कि **इन्द्र शत्रोर्विवर्द्धस्व** यह मन्त्र बोला । इन्द्र के शत्रु तू बढ़ । लेकिन उसने स्वर का भेद कर दिया ।

मन्त्रो हीनः स्वरतो वर्णतो वा ।
मिथ्या प्रयुक्तो न तमर्थमाह ।
स वाग्वज्रो यजमानं हिनस्ति ।
यथेन्द्रशत्रुः स्वरतोऽपराधात् ॥

वेदमन्त्र यदि स्वर और वर्ण से रहित हो जाए तो उसका प्रयोग व्यर्थ हो जाता है । वह वाग्वज्र होकर यजमान का ही नाश करता है । इसलिए ब्राह्मणों को चाहिए कि योग्य बनकर वेदों के मन्त्रों को यथावत स्वर के सहित

अभ्यास करें । यदि स्वर सहित न पढ़ें और अशुद्ध पढ़ें तो उनका कोई उद्देश्य नहीं होता । इन्द्रशत्रोः के दो समास बनते हैं । इन्द्रस्य शत्रु और इन्द्र शत्रु । आद्योदात्त और अन्त्योदात्त । परिणाम यह हुआ कि यहाँ कर्मधारय लग गया तो हो गया कि यहाँ जो इन्द्ररूप शत्रु है वह बढ़े ।

इधर वृत्रासुर ने तपस्या की कि हम किसी अस्त्र-शस्त्र से न मरें। वज्र से भी न मरें और वह इन्द्र से लड़ने के लिए दैत्यों की सेना लेकर पहुँच गया। इन्द्र आया लड़ने के लिए । दोनों में भयंकर युद्ध हुआ । अन्त में क्या हुआ कि ऐरावत हाथी सहित उसने इन्द्र को हरा दिया । किसी तरह छोड़ा। इन्द्र ने अपने वज्र में समुद्र का फेन लगाकर उसको मारा । इस तरह से वृत्रासुर का वध हुआ ।

वृत्रासुर पूर्व जन्म में राजा चित्रकेतु था । चित्रकेतु ने अपने पुण्य के फलस्वरूप विद्याधर का रूप धारण किया और कैलाश गया । भगवान् शङ्कर पार्वती के सहित कैलाश पर विराजमान् थे । सबके सामने बैठे थे । पार्वती जी वामाङ्ग में बैठी थीं । चित्रकेतु को देखकर अश्रद्धा हो गई । कहने लगा कि शङ्कर तो निर्लज्ज है । स्त्री के साथ इस तरह से बैठा है । गृहस्थाश्रमी भी एकान्त में अपनी स्त्री के साथ बैठते हैं । ये तो सबके सामने ही सभा में बैठा है । शङ्कर जी तो सुन लिए पर पार्वती जी से नहीं रहा गया। पार्वती जी ने शाप दे दिया कि जाओ असुर हो जाओ । वही फिर वृत्रासुर बना ।

श्रीमद्भागवत में आता है कि वह भगवान् का भक्त था । इन्द्र के साथ लड़कर मर गया तो उसका उद्धार हो गया —

अजातपक्षा इव मातरं खगाः स्तन्यं यथा वत्सतराः क्षुधार्ताः।
प्रियं प्रियेव व्युषितं विषण्णा मनोऽरविन्दाक्ष दिदृक्षते त्वाम्॥

जैसे अजातपक्षी अपनी माता की बाट जोहता है और जैसे सद्योजात बछड़ा अपनी माता गौ की बाट जोहता है उसी प्रकार भगवन् मैं आपके दर्शन की बाट जोह रहा हूँ । जिस प्रकार से परदेश में गई हुई नारी अपने पति के आगमन की बाट जोहती है उसी प्रकार मेरी आँखें आपके दर्शन के लिए आतुर हैं । ऐसा यह भगवद्भक्त था । इन्द्र के द्वारा जब यह मारा गया तो इसकी आसुर योनि समाप्त हुई और यह भगवान् को प्राप्त हो गया ।

आगे की कथा आती है कि हरिश्चन्द्र नाम के एक राजा थे । उनकी कोई सन्तान नहीं थी । उन्होंने सन्तान के लिए वरुण देवता की आराधना की। उनकी आराधना से वरुणदेव प्रसन्न हुए । कहा कि वरदान माँगों तो उन्होंने कहा कि महाराज ! हमको पुत्र मिलना चाहिए । यदि आप हमें पुत्र देंगे तो उसे हम आपको ही समर्पित कर देंगे । उसे आपको ही चढ़ा देंगे । वरदान से उनको पुत्र हो गया । नाम रखा रोहिताश्व । अब वरुणदेव आए और बोले कि बेटा दो तो उन्होंने कहा कि अभी दाँत ही नहीं निकले महाराज! जब दाँत निकल गए तब वरुण जी फिर आए तो कहा कि अभी इसका उपनयन नहीं हुआ है । उपनयन हुआ । रोहित को पता लग गया कि हमारा बलिदान वरुणदेव के लिए होने वाला है । वह भाग गया । उसकी खोज की गई लेकिन पता ही नहीं चला कि वह कहाँ चला गया । इधर वरुण देव को क्रोध आ गया तो हरिश्चन्द्र को जलोदर हो गया । हरिश्चन्द्र जी ने कहा कि वरुणदेव जी कृपा करिए तो उन्होंने कहा कि तुम अपना पुत्र बलिदान करना चाहते थे । अब लाओ और बलिदान करो । अब हरिश्चन्द्र ने भेजा कि कोई ऐसा मिल जाए जिसको देकर हम रोहित को बचा लें । खोज हुई तो एक अजीगर्त नाम का गरीब ब्राह्मण मिला । उसके पास राजा के अनुचर गए और कहा कि आप राजा को अपना पुत्र बेच दो । उसका बलिदान होगा । गरीब ने कहा कि मेरे तीन बेटे हैं । हम एक बेटा दे देंगे। अजीगर्त बोला कि बड़ा बेटा हम नहीं देंगे । माँ बोली कि हम छोटा बेटा नहीं देंगे । अब मझला था उसने कहा कि जब माँ और बाप दोनों ही हमको नहीं चाहते तो हमको ही ले चलो । द्रव्य लेकर अजीगर्त ने शुनःशेप को सौंप दिया । अब शुनःशेप को ले जाकर बलि चढ़ाने जा रहा थे इतने में वह छूटकर विश्वामित्र जी के यहाँ जा पहुँचा । विश्वामित्र जी से कहा कि हमारी बलि होने वाली है । उन्होंने उसे वरुण देवता का स्तोत्र उसको सुना दिया। बोले कि जब तुमको बलिदान के लिए ले जाएँ तो तुम यह स्तोत्र पढ़कर सुना देना । उसने स्तोत्र याद कर लिया । उसे बलिशाला में ले जाया गया । जब बलिदान का मौका आया तो कौन उसको काटे ? जो भी काटेगा उसको ब्रह्महत्या लगेगी । कोई नहीं मिल रहा था तो उसके पिता अजीगर्त ने कहा कि कुछ रुपया हमें दे दो तो हम ही

काट देंगे । वह बालक वरुणदेव की स्तुति करने लगा । वरुणदेवता प्रसन्न हो गए । बोले कि जाओ हमने तुमको मुक्त किया । अजीगर्त ने कहा कि अब चलो बेटा घर तो उसने कहा कि आप मेरे पिता नहीं है । मेरे पिता तो विश्वामित्र जी हैं जिन्होंने प्राण बचाने का मन्त्र हमको दिया । वह विश्वामित्र जी के पास गया और उनका पुत्र बन गया।

इधर क्या हुआ कि राजा हरिश्चन्द्र की प्रशंसा होने लगी कि लोक में हरिश्चन्द्र जैसा राजा नहीं । चारों ओर से लोग ऐसा कहने लगे । विश्वामित्र जी ने कहा कि हम उसकी योग्यता देखते हैं । माया से एक जंगली सूअर बनाया । उसने आकर राजा का बगीचा उजाड़ दिया । राजा को पता लगा तो उसको मारने के लिए धनुष बाण लेकर दौड़े । जंगल में चले गए। कभी सूअर दिखता था और कभी अन्तर्धान हो जाता था । अन्त में शूकर का पता नहीं चला और एक ब्राह्मण सामने आ गया । राजा हरिश्चन्द्र ने ब्राह्मण को प्रणाम किया । राजा ने पूछा कि कैसे आये ? उसने कहा कि हम धन के इच्छुक हैं । कुछ दे सकें तो दे दीजिए । राजा बोले कि जो आप माँगेगे उसे मैं आपको दे दूँगा । यह वचन देता हूँ । ब्राह्मण बोला कि अपना राजपाट सब हमको दे दो । कहा कि ठीक है । फिर राजा अपने महल में आए । रात को नींद नहीं आई । सबेरे ब्राह्मण आ गया कि आपने वचन दिया था सो हम आ गए हैं । राजा ने सब दे दिया । ब्राह्मण बोला कि अब भूयसी दक्षिणा होती है वह दीजिए । राजा बोले कितना दें ? तो उन्होंने कहा कि अब राज्य के अनुसार दशांश या षष्ठांश जितनी होती हो आप दीजिए। राजा ने कहा कि ठीक है आप खजाने से ले जाइए । बोले जब आपने राज्य दे ही दिया तो खजाना तो हमारा हो ही गया । हमारी ही चीज तुम हमको कैसे दोगे ? अलग से दो । अब राजा संकट में पड़ गए । बोले कि हमको कहीं बेचकर आप अपनी दक्षिणा प्राप्त कर लो । हरिश्चन्द्र को लेकर विश्वामित्र जी काशी गए । आप लोग नाटक में देखते होंगे । पढ़ते होंगे । आगे आगे राजा हरिश्चन्द्र और पीछे-पीछे पत्नी शैब्या और पुत्र रोहिताश्व काशी पहुँचे । काशी में एक धनवान् ब्राह्मण था । उसने राजा की स्त्री को खरीद लिया । रूपया दे दिया पर उतने से विश्वामित्र जी का काम नहीं बना । बोले और लाओ तो

वहाँ का एक चाण्डाल डोम था उसने राजा को खरीद लिया । वह रुपया राजा हरिश्चन्द्र ने विश्वामित्र जी को चुका दिया । डोम ने इनका तिलक मिटाया और कहने लगा कि यहाँ हमारे श्मशान में रहो और जो भी शव लेकर आए उसका टैक्स लो तब जलाने दो । चाण्डाल का सेवक बनकर राजा उसकी आज्ञा का पालन करने लगे । वह जो कुछ देता था उसी को खाकर जीवन बिताने लगे ।

रोहिताश्व की माँ ब्राह्मण के यहाँ दासी बनकर रहती थी । एक दिन रोहिताश्व को एक सर्प ने काट लिया और वह मर गया । शैब्या अपने पुत्र को लेकर श्मशान में आई । राजा हरिश्चन्द्र ने शव को देखा बोला कि इसका टैक्स दो । हमारे पास तो कुछ भी नहीं है । रानी बोली कि आप पहचानते हो कि यह कौन है ? हमारा पुत्र है । राजा बोले कि हम अपने मालिक चाण्डाल के सेवक हैं । उनकी आज्ञा का पालन करेंगे । बिना कर के हम इसे नहीं जलाने देंगे । ऐसी कठिन प्रतिज्ञा उन्होंने की । अन्त में रानी बहुत रोई तो राजा हरिश्चन्द्र ने पहचाना और पहचानने के बाद अग्नि प्रज्ज्वलित की और भगवती जगदम्बा की आराधना करने लगे कि माँ हमारे सत्य की रक्षा कीजिए । अब हम अपने प्राण दे रहे हैं । परिणाम यह हुआ कि भगवती प्रकट हो गईं और उन दोनों से उन्होंने कहा कि तुम दोनों स्वर्ग चलो और रोहिताश्व को उन्होंने जीवित कर दिया । इस तरह से राजा हरिश्चन्द्र के सत्य व्रत की कथा देवी भागवत में आती है । राजा हरिश्चन्द्र सत्यव्रत थे । उन्होंने अपने सत्य को अन्त तक भी नहीं छोड़ा । अपने आपको भी बेच दिया ।

श्रीमद्भागवत में वरुण देव की कथा आती है पर उसके बाद की कथा इस पुराण में ही है । इस तरह से देवी भागवत के द्वारा ये सब कथाएँ सुनाई गई ।

आगे की कथा आती है कि भगवान् श्रीरामचन्द्र जी ने देवी की आराधना की और इसी प्रकार भगवान् श्रीकृष्ण ने अवतार धारण किया । असुरों का वध किया । इसमें एक कथा आती है कि एक हयग्रीव नाम का दैत्य हुआ । उसका सिर घोड़े जैसा था उसने तपस्या करके वरदान माँगा कि हम किसी के द्वारा मारे न जाएँ । यदि मारे भी जाएँ तो हमारे ही जैसा कोई

हमें मारे । मारने वाला भी हयग्रीव ही हो । ब्रह्मा जी ने वरदान दे दिया । अब उसने वेदों का हरण कर लिया । अत्याचार शुरु किया । इधर भगवान् विष्णु शयन कर रहे थे । निद्रावस्था में अपना धनुष अपने सिरहाने रख लिया था उन्होंने और उस धनुष की प्रत्यंचा चढ़ी हुई थी । इतने में देवताओं ने दीमक पैदा कर दिया । उसका नाम भम्री था । दीमक ने आकर प्रत्यंचा की डोरी को जैसे ही काटा धनुष की प्रत्यंचा चल गई और भगवान् विष्णु का सिर कट गया । बिना सिर के उनका धड़ हो गया । फिर भगवती से प्रार्थना की गई तो भगवती ने कहा कि इनके धड़ पर घोड़े का सिर लगाओ। अश्विनीकुमारों ने भगवान् के धड़ पर घोड़े का सिर लगाया और भगवान् विष्णु का जो कटा हुआ सिर था वह कहाँ अन्तर्धान हो गया यह किसी को पता ही नहीं चला । अब भगवान् हयग्रीव बन गए । हयग्रीव के रूप में भगवान् विष्णु का उस हयग्रीव दैत्य से युद्ध होता है और वह उस युद्ध में वह मारा जाता है । यही भगवान् हयग्रीव भगवती राजराजेश्वरी की विद्या अगस्त्य मुनि को बतलाते हैं । सहस्रनाम का उपदेश करते हैं ।

इधर भगवान् श्रीकृष्ण के पिता वसुदेव-देवकी की कथा भी पूर्व जन्म की आती है कि पहले जन्म में ये दोनों कश्यप और अदिति थे । देवताओं के पिता-माता थे । कश्यप की और भी अनेक पत्नियाँ थीं । जिनमें दिति और दनु भी थी । दिति से दैत्य दनु से हुए दानव । यह कथा हम कल आपको बता चुके हैं । हुआ यह कि अदिति का पुत्र इन्द्र हुआ । दिति ने सोचा कि हमारा भी पुत्र प्रतापी बने । उसने अपने पति कश्यप से कहा कि हमको ऐसा पुत्र दो जो इन्द्र के समान प्रतापी हो । कश्यप जी ने एक व्रत बताया कि इसका पालन करो तो तुम्हारा इस प्रकार का पुत्र होगा। दिति ने बड़ी कठिनाई से उस व्रत को पूर्ण किया । कश्यप जी ने गर्भाधान किया तो दिति के पेट में बच्चा आ गया । पेट में जब बच्चा पलने लगा तो अदिति को चिन्ता हुई कि यदि इन्द्र के समान इसका पुत्र हो जाएगा तो मेरे पुत्र का क्या होगा ?

संसार में राग-द्वेष-ईर्ष्या यही मनुष्य के पतन का कारण होता है । मनुष्य के मन में यह आ जाए तो वह बड़े-बड़े अनर्थ करता है । यही भगवान् की माया है । इसी माया से शरीर में अहंभाव हो जाता है । इसी को ममता

कहते हैं । अहंता ममता के कारण राग द्वेष उत्पन्न होते हैं । राग द्वेष के कारण मनुष्य कार्याकार्य का विचार नहीं करता कि उसे क्या करना चाहिए और क्या नहीं करना चाहिए ।

अदिति ने इन्द्र को बुलाया और कहा कि तू दिति के पेट में पल रहे बच्चे को मार डाल । विमाता भी माता के ही समान होती है तो उसे मारें कैसे? इन्द्र ने सोचा कि बुद्धिमत्ता से काम लेना चाहिए । माता दिति के पास जाकर बोला कि हमारी माता और आप दोनों बहनें हैं । हम आपकी सेवा करना चाहते हैं । इन्द्र सेवा करने लगा । इन्द्र ने सोचा कि इनमें कोई दोष आ जाए तो हम अपना काम करें ।

व्यक्ति को भोजन के बाद आचमन करना चाहिए । हाथ मुँह न धोने से दोष लगता है । कहते हैं कि भोजन का भी वस्त्र होता है । जैसे नंगा व्यक्ति शोभा को प्राप्त नहीं होता उसको वस्त्र पहनना पड़ता है । वस्त्र से ही उसकी शोभा होती है उसी प्रकार भोजन में भी नग्नता नहीं होनी चाहिए। आप लोंगों ने देखा होगा कि अग्नि में हवन करते हैं तो एक लाल कपड़ा घी में डुबाकर अग्नि के ऊपर ढँकते हैं । नग्नता से हमें भय है ऐसा वहाँ बोला जाता है। अग्नि का वस्त्र है । इसी तरह से भोजन का वस्त्र आचमन होता है । भोजन के पहले आचमन करो और भोजन के बाद भी आचमन करो ।

एक दिन दिति आचमन करना भूल गई और सो गई । अब इन्द्र ने उसके पेट में प्रवेश किया । पेट में प्रवेश करके अपने वज्र से उस गर्भ के बालक के सात टुकड़े कर दिए । इसके बाद भी उसे शान्ति नहीं मिली और उसने उन सातों के और भी सात-सात टुकड़े कर दिए । 49 टुकड़े हो गए लेकिन वह ऋषि का वीर्य था तो नष्ट कैसे हो सकता था ? पूरे 49 पैदा हो गए और उसके साथ इन्द्र भी पैदा हो गया और बोला कि हम भी आपके बेटे हैं । इन्द्र के साथ पैदा होने के कारण वे सब भी देवताओं की कोटि में चले गए और इन्द्र के सहायक बन गए । वही 49 मरुत बन गए । दिति के पुत्र होने पर भी इन्द्र के साथ उत्पन्न होने के कारण उसका कुछ बिगाड़ नहीं हुआ। इस तरह से अदिति ने यह कार्य किया तो उसे शाप लग गया कि तुम भी फिर से जन्म लो ।

इधर वरुण देवता से कश्यप जी ने एक गाय ली । यह गाय कश्यप जी को इतनी प्रिय हो गई कि वरुण जी को नहीं लौटाई । इस पर वरुण देवता ने कश्यप जी को शाप दिया कि तुम भी गोपाल हो जाओ। कश्यप और अदिति दोनों दूसरे जन्म में देवकी और वसुदेव बने । इन दोनों के जो छः पुत्र थे इनके भी पूर्व जन्म की कथा आती है कि ये भी दैत्य थे। शापित थे तो अनेक जन्म लेते-लेते ये सब देवकी के गर्भ में आए। इस तरह से छः पुत्र मारे गए और सातवें पुत्र के रूप में भगवान् विष्णु ने कृष्ण के रूप में जन्म लिया ।

मुख्य रूप से बात यह है कि जब धर्म की ग्लानि होती है और अधर्म बढ़ जाता है तो भगवान् अवतार लेते हैं —

यदा यदा हि धर्मस्य ग्लानिर्भवति भारत ।
अभ्युत्थानमधर्मस्य तदात्मानं सृजाम्यहम् ॥

और कुछ निमित्त भी बन जाता है । एक निमित्त तो यह बना कि भगवान् ने जगत् के कल्याण के लिए नर-नारायण के रूप में अवतार लिया। ब्रह्मा जी के वक्षःस्थल से धर्म की उत्पत्ति हुई । धर्म का मूर्ति के साथ विवाह हुआ । मूर्ति से दो पुत्र हुए नर और नारायण । नर नारायण भगवान् के अंश से उत्पन्न हुए तो इन्होंने जगत् के कल्याण के लिए बदरिकाश्रम क्षेत्र में तपस्या करना आरम्भ कर दिया । घोर तपस्या करने लगे । हिमालय में नित्य निरन्तर ध्यानमग्न रहने लगे । इनकी तपस्या को देखकर इन्द्र को यह भय हुआ कि कहीं इन्द्रपद प्राप्ति के लिए तो तप नहीं कर रहे हैं ?

बात क्या है कि कुछ लोग तुच्छ हृदय के होते हैं । सदा डरते रहते हैं कि हमारी चीज चली न जाए । इसमें तुलसीदास जी ने एक उदाहरण दिया है कि कुत्ता सूखी हड्डी चबाता है । उस नुकीली हड्डी से उसके मसूड़े कटने लगते हैं और उसमें से खून निकलने लगता है । अपने ही खून को वह चाटता है और समझता है कि स्वाद हड्डी से मिल रहा है । संसार का जो सुख है वह इसी तरह का है । सुख अपनी आत्मा में है । आत्मा का सुख ही विषयों में आभासित होता है । यह नियम है कि जो वस्तु प्रेमास्पद होती है उसके मिलने से सुख होता है । जिससे हमारा प्रेम होता है उस व्यक्ति या

पदार्थ के मिलने से हमें सुख की अनुभूति होती है ।

अब प्रश्न यह आता है कि प्रिय कौन है और अप्रिय कौन है ? जो हमारे अनुकूल होता है, जो हमें सुख प्रदान करता है वह हमारा प्रिय होता है। जो हमारे सुख में बाधक हो जाता है वह अप्रिय हो जाता है । सुख का साधक कौन होता है ? जिसको हम चाहते हैं, जिसमें हमारी ममता है वह हमारे सुख का साधक होता है । ममता में हमारा प्रेम मैं के कारण है । मैं में प्रेम स्वाभाविक है ममता में जो प्रेम है वह सोपाधिक है ।

सोपाधिक और निरुपाधिक प्रेम में अन्तर है । जैसे कोई व्यक्ति किसी सुन्दरी नारी को देखकर, उसके स्वरूप को देखकर प्रसन्न होता है और कहता है हम इससे प्रेम करते हैं । अगर उसको चेचक हो जाए, आँख फूट जाए तो उसका प्रेम खत्म हो जाएगा । उसका प्रेम सौन्दर्य के लिए था स्वाभाविक नहीं था । स्वाभाविक प्रेम तो अपने आप से है । अपना जो आपा है उससे हमारा स्वाभाविक प्रेम होता है । इसीलिए उससे जो सम्बन्धित है उससे ममता के कारण प्रेम होता है । परम प्रेमास्पद आत्मा होता है । जब हमारे मन में किसी वस्तु को प्राप्त करने की इच्छा होती है तो वह इच्छा दूसरी अन्य इच्छाओं को दबा देती है और वह हमारे हृदय में काँटे जैसी चुभने लगती है । जब वह वस्तु मिलती है तो चित्त प्रसन्न होता है । पहले अन्य इच्छाएँ नष्ट हुई थी और अब ये इच्छा भी वस्तु के मिल जाने से नष्ट हो जाती है । बिना इच्छा के शुद्ध हृदय में आनन्दस्वरूप आत्मा का प्रतिबिम्ब पड़ता है । यह आनन्द अपने आत्मा का है। लेकिन हम भ्रम से विषय में आरोपित कर लेते हैं कि मिलने से हमको सुख मिला। यह समझ लो कि हड्डी का सुख है —

सूख हाड़ ले भाग सठ स्वान निरखि मृगराज ।
छीनि लेइ जनि जान जड़ तिमि सुरपतिहि न लाज ॥

इन्द्र ने माया रची । सिंह व्याघ्र दिखाया कि नर-नारायण डर कर भाग जाएँ । और भी तरह-तरह की माया रची पर वे विचलित नहीं हुए तब उसने वसन्त, अप्सराएँ और काम इन सबको भेज दिया । एकाएक वसन्त ऋतु आ गई । फूल खिल गए । सुगन्धित हवाएँ बहने लगी । नारायण ने कहा कि यह क्या हो रहा है तो नर ने कहा कि यह माया है । इतने में बहुत

सी अप्सराएँ आ गईं । अप्सराएँ नृत्य करने लगी तो उन दोनों ने उन पर क्रोध नहीं किया और अपनी जाँघ से एक अप्सरा निकाली । अप्सराओं से कहा कि हमारे उरू से निकली ये अप्सरा है । इसका नाम उर्वशी है । इसको आप इन्द्र को उपहार में दे दीजिए । उन अप्सराओं से कहा कि अब आप जाइए तो उन सबने कहा कि हम तो आपको ही अपना स्वामी मानते हैं और अब आपके साथ ही रहेंगे । नर-नारायण ने कहा कि जब हमारा कृष्ण अवतार होगा तब तुम सब गोपी बनोगी । इन अप्सराओं की संख्या सोलह हजार थी । ये ही गोपी बन गईं । इसी तरह से जो लोग भगवान् रामावतार के समय में वानर बने थे इस जन्म में यदुवंशी बनकर भगवान् के सहयोगी बने । जो लोग धर्म का नाश करते थे उन सबका संहार करने के लिए, वर्णाश्रम धर्म की स्थापना के लिए भगवान् ने अवतार धारण किया और अनेकों चरित्र किए । कल आप और कथा सुनेंगे । आज यही पर प्रवचन को विराम देते हैं ।

श्री राम जय राम जय जय राम
प्यारे जरा तो मन में विचारो क्या साथ लाए अरु ले चलोगे
जाता सदा साथ यही पुकारो गोविन्द दामोदर माधवेति
गोविन्द दामोदर माधवेति हे कृष्ण हे यादव हे सखेति
श्रीकृष्ण गोविन्द हरे मुरारे हे नाथ नारायण वासुदेव
श्रीकृष्ण गोविन्द हरे मुरारे हे नाथ नारायण वासुदेव
धर्म की जय हो । अधर्म का नाश हो ।
प्राणियों में सद्भावना हो । विश्व का कल्याण हो ।
गोमाता की जय हो । गोहत्या बन्द हो ।
हर हर महादेव ।

सप्तम दिवस

सभी देवतागण भगवती से ही शक्ति प्राप्त करते हैं

समुपस्थित विद्वद्वृन्द ! देवियो ! सज्जनो !

राजा हरिश्चन्द्र की परम पावनी कथा आपने सुनी । जब राजा हरिश्चन्द्र अग्नि में अपने परिवार के सहित शरीर का त्याग करने को उद्यत हो गए । भगवती का स्मरण किया । वे प्रकट हुईं और उन्होंने हरिश्चन्द्र से कहा कि वरदान माँगों तब उसने कहा कि माँ ! अब हमें जीवन की कोई आकांक्षा नहीं है । हमें अपने धाम में आप ले चलिए किन्तु हम अकेले नहीं जाना चाहते । अपनी प्रजा को भी अपने साथ दिव्य लोक में ले जाना चाहते हैं । भगवती ने उनका आग्रह स्वीकार किया । राजा हरिश्चन्द्र अयोध्या गए। अपने पुत्र रोहित को राजसिंहासन पर बैठाया । समस्त प्रजा राजा को बहुत चाहती थी । जिस प्रकार भगवान् राम के साथ समस्त अयोध्यावासी दिव्य लोक गए उसीं प्रकार राजा राजा हरिश्चन्द्र के भी साथ गए ।

सबसे प्रेम करना, सबके कल्याण को अपना कल्याण मानना यह हमारे शास्त्रों में स्थान-स्थान में वर्णित है । राजा शिवि ने एक कपोत को बचाने के लिए अपने शरीर का एक एक अंग काट-काट कर एक बाज को दे दिया । भगवान् प्रकट हुए और वरदान माँगने के लिए कहा तो उन्होंने यही कहा —

न त्वहं कामये राज्यं न स्वर्ग्यं नाऽपुनर्भवम् ।
कामये दुःखतप्तानां प्राणिनाम् आर्तिनाशनम् ॥

हम न राज्य चाहते हैं, न स्वर्ग चाहते हैं और न मोक्ष चाहते हैं । हमारी तो एकमात्र आकांक्षा यह है कि दुःख से संतप्त प्राणियों के दुःख को

दूर कर दीजिए । वे सभी सुखी हो जाएँ । हमारे सनातन धर्म में यही प्रार्थना की गई है —

सर्वे भवन्तु सुखिनः सर्वे सन्तु निरामयाः ।
सर्वे भद्राणि पश्यन्तु मा कश्चिद् दुःखभाग् भवेत् ॥

सब सुखी हो जाएँ किसी को रोग न हो, किसी को अमंगल न देखना पड़े और सब लोग निर्भय हो जाएँ । यही सज्जनों की प्रार्थना रहती है । और यही साधु-सन्तों का लक्षण होता है । सन्त-महात्मा अपने शरीर का भी परित्याग दूसरों के लिए करते हैं —

सन्त बड़े परमारथी, शीतल उनका संग ।
तपन मिटावें और की, दे दे अपना अंग ॥

सन्त परमार्थी होते हैं, चन्दन के समान शीतल उनका मन होता है, राजा हरिश्चन्द्र प्राणियों के लिए आदर्श थे । आदर्श कहते हैं दर्पण को । अपने को देखिए । अपने स्वार्थ का त्याग करके दूसरों के कल्याण के लिए कार्य कीजिए ।

आपने सुना दैत्यों का जगदम्बा ने विनाश किया । फिर वे अपने मणिद्वीप में पधारती हैं । मणिद्वीप कहाँ हैं ? किस स्थान पर है ? इसकी जिज्ञासा जब जनमेजय ने की तो व्यास जी ने बताया कि ब्रह्मलोक से भी ऊपर मणिद्वीप है । जैसे भगवान् नारायण क्षीरसमुद्र के मध्य में शेषनाग की शय्या पर विराजमान होते हैं वैसे क्षीरसमुद्र के स्थान पर वहाँ एक अमृत का समुद्र है और उसके बीच में एक मणि का द्वीप माने टापू है । जिसको चारों ओर अमृत ही भरा है । उस द्वीप में नौ रत्नों के नौ परकोटे हैं । उन परकोटों के बीच में कदम्ब का उपवन है । उस उपवन में बीच-बीच में अमृत की बावड़ियाँ हैं और मध्य में चिन्तामणि का महल है । उस महल में ब्रह्ममय सिंहासन है । जिसमें ब्रह्मा, विष्णु, रुद्र, ईश्वर चार पाए हैं और सदाशिव फलक हैं । उस पर भगवती भुवनेश्वरी विराजमान हैं । यहाँ भुवनेश्वरी नाम आया है । वस्तुतः भुवनेश्वरी और राजराजेश्वरी में कोई अन्तर नहीं है । ऐसे स्थान पर जगदम्बा निवास करती हैं जहाँ उनकी अंगभूता देवियाँ निवास करती हैं । जहाँ ब्रह्मा, विष्णु, महेश अपने पौरुष को, शक्ति को प्राप्त करते

हैं । जगदम्बा के चरण पीठ की आराधना अनेकों देवता करते हैं । ऐसा वैभवशाली मणिद्वीप है जिसका वर्णन भगवान् आद्य शङ्कराचार्य जी ने सौन्दर्यलहरी में किया है —

सुधासिन्धोर्मध्ये सुरविटपिवाटीपरिवृते
मणिद्वीपे नीपोपवनवति चिन्तामणिगृहे ।
शिवाकारे मञ्चे परमशिवपर्यङ्कनिलयां
भजन्तिं त्वां धन्याः कतिचन चिदानन्दलहरीम् ॥

ऐसी भगवती मणिद्वीपनिवासिनी माँ वहाँ सदा विराजमान रहती हैं।

एक दुर्गम नाम का दैत्य था । उसने घोर तपस्या करके ब्रह्मा जी से यह वरदान माँग लिया कि हम समस्त वेदों को ग्रहण कर लें और हममें इतना बल हो कि कोई हमको न पराजित कर सके और न ही मार सके । परिणाम यह हुआ कि दुर्गम दैत्य ने भयंकर रूप धारण करके वेदों को खींच लिया। वेद शब्दात्मक हैं जो ऋषि-मुनियों के हृदय में रहता है । ऋषि-मुनियों और ब्राह्मणों से उसने वेद आकृष्ट कर लिया । वे सब वेदमन्त्र भूल गए तो सन्ध्यावन्दन बन्द हो गया । यज्ञ-यागादि बन्द हो गए । हवन नहीं हुआ तो अनावृष्टि हो गई । सौ वर्षों तक वर्षा नहीं हुई । देवतागण आहुति न पाकर निर्जर से सजर हो गए । उनमें भी बुढ़ापा आ गया । ऐसी स्थिति में जब चारों ओर त्राहि-त्राहि होने लगी तो जगदम्बा की आराधना की गई । जगदम्बा ने शाकम्भरी रूप से प्रकट होकर सबका दुःख दूर किया । दुर्गा सप्तशती में तो यह आता है कि भगवती हजार नेत्रों वाली हैं । सहस्र नेत्रों से प्रकट होकर भगवती रोईं । अपने बेटों के लिए माँ रोती ही हैं । उनके रोने से आँसुओं की नदी बही । उसी से अनेकों शाक पैदा हो गए । उस शाक को खाकर मुनियों और मनुष्यों का दुःख दूर हुआ । इसलिए देवी का एक नाम शाकम्भरी है । अकाल के दिनों में भी उन्होंने सुकाल कर दिया और दुर्गम दैत्य को मारने के कारण उनका नाम दुर्गा हुआ ।

इसी प्रकार आप सब भगवान् श्रीकृष्ण की कथा सुन रहे थे । जब देवकी-वसुदेव कारागार में थे तो उन्होंने अवतार धारण किया । वहाँ से गोकुल गए । नन्द-यशोदा को पुत्रसुख प्रदान किया । गोपों को अपने

साहचर्य का सुख दिया और अपनी परम शक्ति राधा जो भगवती का ही रूप थीं उनके साथ रासलीला की । समस्त दुष्टों का दर्प दलन करके महाभारत के युद्ध में जो राजा प्रजा का खून पी रहे थे, शोषण कर रहे थे, स्वयं विलासिता को प्राप्त कर रहे थे उनका नाश किया । उसके बाद सोमनाथ क्षेत्र में एक व्याध को अपना मित्र बनाकर अपने श्रीविग्रह का त्याग किया ।

इसके पश्चात् एक दूसरी कथा आती है कि एक तारक नाम का असुर उत्पन्न हुआ । तारकासुर ने भी घोर तपस्या की । हम बता चुके हैं कि दैत्यों की तपस्या अपने सुख और दूसरों को दुःख देने के लिए होती है । प्रायः यह नियम है कि सांसारिक सुख दूसरों को दुःख दिए बिना नहीं प्राप्त हो सकता।

नानुपहत्य भूतानि भोगः सम्भवति ।

यह सिद्धान्त है कि जब तक आप दूसरों को कष्ट नहीं देंगे तब तक आप सुख नहीं भोग सकते । हम लोग देखते हैं कि जो लोग सम्पन्न है रईस हैं, राजा हैं, महाराजा हैं, मिनिस्टर हैं वे अपना काम दूसरों से करवाते हैं। अपना बिस्तर दूसरों से लगवाते हैं । भोजन दूसरे बनाते हैं । अपना काम वे स्वयं नहीं करते हैं । वे भी तो मनुष्य हैं । उनके सुख को बिना देखे अपने सुख के लिए उनका उपयोग करते हैं तो एक तरह से उनको कष्ट ही तो देते हैं । वे अगर काम से छुट्टी चाहें तो मालिक कहाँ छुट्टी देता है ? कहता है काम करना पड़ेगा नहीं तो तन्ख्वाह नहीं मिलेगी । बेचारे करते हैं । ऐसा भी नहीं है कि जिनके साथ ऐसा व्यवहार होता है वे दूसरों को कष्ट न देते हों । उनसे जो छोटे हैं उनको वे त्रास देते हैं । यह प्रवृत्ति है । जहाँ आप भोग भोगना चाहेंगे वहाँ दूसरों को कष्ट देना पड़ेगा तभी आप भोग सकते हैं । असुर लोग घोर तपस्या कर अपने शरीर को ही अजर अमर बनाना चाहते हैं। उस शरीर से संसार के भोग भोगना चाहते हैं । भोग ले भाई । लेकिन उससे तृप्ति तो हो । संसार के भोगों से कभी किसी को तृप्ति नहीं होती । जैसे आग में जितना भी हवन करो उतनी ही अग्नि प्रज्ज्वलित होती है इसी प्रकार जितना भी भोग भोगो मनुष्य के मन में उतनी ही तृष्णा और कामना जन्म लेती है । उसकी शान्ति सन्तोष के सिवाय और किसी उपाय से नहीं होती। इसलिए गोस्वामी तुलसीदास जी ने कहा —

बिनु संतोष न काम नसाहीं । काम अछत सुख सपनेहुँ नाहीं॥
राम भजन बिनु मिटहिं न कामा । थल बिहीन तरु कबहुँ कि जामा॥

जब तक सहज सन्तोष नहीं आएगा तब तक शान्ति नहीं मिलेगी । एक तो कृत्रिम सन्तोष होता है कि हमने बहुत प्रयत्न किया । जब देखा कि वस्तु नहीं मिल रही है तो सोचा कि सन्तोष कर लो । जब वस्तु के मिलने की सम्भावना हो जाएगी तो यह सन्तोष खत्म हो जाएगा । सहज सन्तोष उसको कहते हैं कि हमारे मन से इच्छा ही समाप्त हो जाए । इच्छाएँ समाप्त कब होगी ? जब बड़ी चीज मिल जाएगी ? आपके गाँव में कुँआ है लेकिन उसका पानी खारा है । अगर कोई आपको ऐसा कुँआ मिल जाए जिसका पानी मीठा हो तो आप खारे कुँए के पास क्यों जाओगे ?

अमृतरसपायी लवणाम्बुवत् तुच्छं विषयं नापेक्षते ।

अमृत रस का पान करने वाला जैसे खारे पानी की इच्छा नहीं करता उसी तरह से जो परमात्मा के ध्यान का, भजन का, स्वरूप का सुख प्राप्त कर लेता है उसको तुच्छ विषय में मन नहीं लगता । इसलिए —

राम भजन बिनु मिटहिं न कामा ।

राम कौन हैं ? जो सबमें रमा हुआ आत्मा है । जो सबका परम प्रेमास्पद है उसको जब तक आप नहीं जानेंगे तब तक आपके कामनाओं की निवृत्ति नहीं होगी । दैत्य इस तत्त्व को नहीं जानते । वे तो शरीर को ही परमात्मा मानते हैं ।

कथा आती है कि एक बार ब्रह्मा जी के पास इन्द्र और विरोचन दोनों गए । इन्द्र देवताओं के प्रतिनिधि थे और विरोचन दैत्यों के प्रतिनिधि थे । जाकर बोले कि हमको ब्रह्म का साक्षात्कार कराइए । ब्रह्मा जी ने कहा कि तीस वर्षों तक हमारे पास ब्रह्मचर्य से रहो तब बतायेंगे । तीस वर्ष के बाद ब्रह्मा जी ने कहा कि —

योऽयं अक्षिणि पुरुषो दृश्यते एतद् अक्षरं एतद् अभयं एतद् ब्रह्म ।

जो आँख में दिखाई पड़ता है वह अक्षर है, अभय है, यही ब्रह्म है। दोनों गए कुँए के पास और झाँककर देखा तो उन्हें अपनी आँखों से अपना

ही रूप दिखाई पड़ा । विरोचन ने समझा कि हम ही हैं । गुरुजी ने कहा कि शरीर ही ब्रह्म है इसी की सेवा करो । वह लौट गया । इन्द्र ने विचार किया। अनेक बार लौट कर आया फिर उसे वास्तविक ब्रह्म का साक्षात्कार हुआ । ब्रह्म का साक्षात्कार किया इसीलिए उसका नाम इन्द्र हुआ ।

विरोचन जैसे लोग शरीर की सेवा कर रहे हैं । आप देखिए कि आजकल लोग लगे हैं शरीर की सेवा में ही । एक महिला ने कहा कि हमारी बहू चार बजे नहाती है । कभी हमारे लिए भोजन बनाती है और कभी खुद ही बनाकर खा लेती है । आप उसको समझाइए । कुछ आशीर्वाद दीजिए। हमने कहा कि ठीक है । हमारे पास ऐसी बातें भी आती है । बात क्या थी कि वह अपने शरीर को ही भगवान् समझती थी । जब तक शरीर के सुख को व्यक्ति अपना सुख मानेगा और जब तक यह विचार नहीं करेगा कि यह शरीर थोड़े ही दिनों का है, जवानी थोड़े दिनों की है, बाद में बुढ़ापा आएगा और अन्त में शरीर छूटेगा और सब कुछ छोड़कर हमें यहाँ से जाना पड़ेगा तब तक वह कुछ नहीं करता । अब जान गए तो वहाँ के लिए भी कुछ करो। वहाँ के लिए जब कुछ करने की बात आएगी तो सबसे पहले यह बात आएगी कि सबेरे उठकर भगवान् की पूजा करो । माता-पिता की, गुरुजनों की, सास-ससुर की सेवा करो, पति की सेवा करो, सदाचार से रहो । जिनको इन बातों का ज्ञान नहीं है उनको सबेरे उठते ही चाय चाहिए । बेड टी । और पुरुषों को तो सबेरे उठकर चाय पीकर ही दाढ़ी बनाना है । उनसे कहो कि सन्ध्या करो तो कहेंगे महाराज ! दाढ़ी बनाएँ कि सन्ध्या करें ? फिर उसके बाद उनको जलपान चाहिए । फिर ऑफिस या दुकान जाने का समय हो गया तो नहाया कि नहीं नहाया पता नहीं । कुछ खाए और चले गए । वहीं पर भोजन भी मँगवा लिया । बराबर अपने कपड़े देख रहे हैं, अपने बाल देख रहे हैं, अपना स्वरूप देख रहे हैं कि कुछ गड़बड़ तो नहीं है । शरीर ऐसा है कि यह कभी भी सुखी नहीं होगा । चाहे कितनी ही सेवा करो कोई न कोई गड़बड़ी इसमें आ ही जाएगी । आप देख लो अपने जन्म से लेकर आज तक । बिना दर्द के शरीर कभी रहा है ? कभी आँख में, कभी कान में, कभी पेट में, कभी पीठ में, कभी पैरों में दर्द । कई तरह के रोग

और कई तरह के शोक सब लगे ही हैं । जो लोग एम एल ए थे उनको कितना सुख था ? अब हारे हैं तो उतना ही दुःख हो गया । यह सुख क्षणिक है जो थोड़े दिनों का है । वास्तविक सुख वह है जो सदा रहता है । यह सुख धर्म से मिलता है । परमात्मा की प्राप्ति से मिलता है । यह ज्ञान इन असुरों को नहीं होता । श्रीमद्भगवद्गीता में कहा गया है —

प्रवृत्तिं च निवृत्तिं च जना न विदुरासुराः ।

किसमें प्रवृत्त होना चाहिए और किससे निवृत्त होना चाहिए ? इसको असुर लोग नहीं जानते हैं ।

न शौचं नापि चाचारो न सत्यं तेषु विद्यते ।

न उनमें पवित्रता है, न आचार है और न ही सत्यता है । ऐसे दुर्दान्त दैत्य बीच-बीच में खड़े हो जाते हैं । लोक का कल्याण तब होता है जब ऐसे व्यक्तियों का ही नहीं बल्कि ऐसी प्रवृत्तियों का भी नाश हो जाए । हम लोग कहते हैं अधर्म का नाश हो । अधर्मी का नाश हो ऐसा नहीं कहते । अधर्मी का भी कल्याण हो ।

हम आपको तारकासुर की कथा सुना रहे थे । तारकासुर बहुत भयंकर था । उसने देवताओं को पराजित कर दिया और उनको स्वर्ग से बाहर करके स्वयं वहाँ पर बैठ गया । दिग्पालों के अधिकार छीन लिए । सभी अधिकारियों के अधिकार अपने हाथ में ले लिए । इसी को कहते हैं डिक्टेटरशिप । कोई भी कुछ नहीं बोल सकता । हम जो कहें वह करो । मन्त्रियों को भी कुछ बोलने का अधिकार नहीं । उसकी तपस्या में उसने माँगा था कि हम अजर अमर हो जाए । तो ब्रह्मा जी ने कहा था कि ऐसा तो नहीं हो सकता पर भगवान् शङ्कर से जिसका जन्म होगा वही तुमको मारेगा । शङ्कर जी विरक्त थे । एक दक्ष नाम के प्रजापति थे जो ब्रह्मा जी के पुत्र थे। बड़े ही धर्मात्मा थे । एक बार जम्बूद्वीप में दुर्वासा जी गए। उनको वहाँ भगवती मिली और उन्होंने उनको एक माला प्रदान की । अपने प्रसाद के रूप में कोई वस्तु मिलती है तो भक्त उसे आदर से लेते हैं । दुर्वासा जी उस माला को पहन कर दक्ष के घर गए । दक्ष ने देखा कि बड़ी सुन्दर माला ऋषि पहने हुए हैं तो उसने कहा कि यह माला आप हमें दे दीजिए। दुर्वासा जी ने माला

दे दी । किन्तु दक्ष ने उस माला का सम्मान नहीं किया। बिस्तर में ही कहीं रख दिया और उसी बीच में उसने अपनी पत्नी में गर्भाधान किया । उससे एक कन्या का जन्म हुआ ।

इससे पहले के जन्म में दस हजार पुत्र दक्ष ने उत्पन्न किए थे । हर्यश्व उनका नाम था । पहले ऐसा होता था कि तपस्या करके सन्तान उत्पन्न करते थे । वे तपस्या करने के लिए चले गए तो वहाँ उन्हें नारद जी मिल गए। उन्होंने उनको ऐसा ज्ञान का उपदेश दिया कि वे घर ही नहीं लौटे। दक्ष को पता लगा तो उन्होंने नारद जी को शाप दिया कि तुम एक जगह नहीं रह पाओगे । चलते ही रहोगे । उन्होंने सोचा कि लड़कों को ही उपदेश देता है। अब कन्याओं को उत्पन्न करना चाहिए ऐसा सोचकर उसने कन्याओं को उत्पन्न किया । उन्हीं कन्याओं में एक सती थी । सती जब बड़ी हुई तो दक्ष ने उसे शङ्कर जी को प्रदान कर दिया । सती अब शङ्कर जी की पत्नी हो गई। एक बार ब्रह्मा जी की सभा में सभी देवतागण बैठे थे । वहाँ शङ्कर जी भी थे। उस सभा में दक्ष प्रजापति पहुँच गया । प्रजापति का बड़ा पद होता है । उसके आने पर सभी सभासद उठकर खड़े हुए लेकिन शङ्कर जी बैठे रहे । दक्ष ने कहा कि हमारा दामाद हमारे आने पर खड़ा नहीं हुआ, न प्रणाम किया और न ही वाणी से स्वागत किया इसलिए हम इसको शाप देते हैं कि यज्ञ में देवताओं के साथ इस रुद्र को आहुति और भाग न मिले। जब शाप दिया तब भगवान् के नन्दी आदि गणों ने भी शाप दिया कि ऐसे लोग भी संसार में ही पड़े रहें, कर्मकाण्ड में ही उलझे रहें, परमार्थ से विमुख हों । फिर भृगु ने भी शाप दिया । परस्पर शापाशापी हुई । भगवान् शङ्कर वहाँ से उदास होकर लौट गए ।

दक्ष के मन में भगवान् शङ्कर को नीचा दिखाने की बात आ गई । उसने बहुत बड़ा यज्ञ किया । ऋषियों को ऋत्विक् बनाया, ब्रह्मा और विष्णु को भी बुला लिया और बड़ा स्वाहाकार, स्वधाकार होने लगा । सती की जितनी भी बहनें थीं सबको और उनके पतियों को भी बुलाया गया । देवताओं को बुलाया लेकिन शङ्कर जी को निमन्त्रण भी नहीं दिया । देवियाँ स्वर्ग से निकल कर कैलाश से उड़-उड़कर जाने लगीं दक्ष के यहाँ । किसी देवी से

पूछ दिया सती ने कि तुम सब कहाँ जा रही हो ? तो उन सबने कहा कि तुम्हें पता नहीं कि तुम्हारे पिता के यहाँ बहुत बड़ा यज्ञ हो रहा है । सती जी ने भगवान् शङ्कर से कहा कि हमारे पिताजी के यहाँ यज्ञ हो रहा है । हमारी सभी बहनें वहाँ आई होंगी । बहुत दिनों से माँ भी नहीं मिली है । हमको भी आप यज्ञ में जाने की आज्ञा दीजिए । हम सबसे मिल लेंगे तो हमको भी अच्छा लगेगा । भगवान् शङ्कर बोले कि दक्ष हमसे द्वेष करता है। हमसे द्वेष के कारण वह तुमको भी नहीं मानता । इसीलिए कहा गया है —

जदपि मित्र प्रभु पितु गुर गेहा । जाइअ बिन बोलेहुँ न सँदेहा॥
तदपि बिरोध मान जहँ कोई । तहाँ गएँ कल्यानु न होई ॥

अपने गुरु के यहाँ बिना बुलाए जाना चाहिए । पिता के यहाँ जाना चाहिए । बिना सन्देह के चले जाओ लेकिन जहाँ कोई अपने जाने से विरोध मानता हो वहाँ जाने से कल्याण नहीं होता । तुम मत जाओ । सती कहने लगी हम तो जायेंगे और पैदल जाने के लिए भी तैयार हो गई । भगवान् शङ्कर ने अपना नन्दी दे दिया कि इस पर बैठकर जाओ । कुछ गणों को भी साथ कर दिया । सती जी पहुँची दक्ष के यज्ञ में । वहाँ सब बहनें थीं, माता थी । माता ने देखा तो कहा कि अच्छा हुआ तुम आ गई । माता ने स्वीकार किया लेकिन बहने कहने लगीं कि बड़ी बेशरम है । बिना बुलाए ही आ गई। पिता दक्ष ने तो निमन्त्रण दिया ही नहीं था । सती जी ने इसको सह लिया। फिर जब यज्ञकुण्ड के पास गईं और वहाँ देखा तो उन्हें कहीं भी शङ्कर जी का भाग दिखाई नहीं पड़ा —

कतहुँ न दीख संभु कर भागा ।

पति के प्रति प्रेम उमड़ पड़ा । दक्ष मेरे पिता हैं । मेरे पति मुझे दाक्षायणी कहकर बुलाते हैं । इसी दक्ष ने मेरे पति का अपमान करने के लिए यज्ञ किया है । मेरे पिता के दिए हुए इस शरीर को अब मैं नहीं रखूँगी। इस शरीर का त्याग करूँगी । ऐसा कहकर सती जी ने योग की अग्नि से अपने शरीर का त्याग कर दिया —

अस कहि जोग अगिनि तनु जारा । भयउ सकल मख हाहाकारा॥

भगवान् शङ्कर बैठे थे तो नारद जी ने कहा कि दक्ष के यज्ञ में सती

गई थी । वहाँ आपका अपमान देखकर उन्होंने अपने शरीर का त्याग कर दिया । शङ्कर ने अपनी जटाएँ पटकीं । उस पटकने से जटा से एक वीरभद्र नाम का गण प्रकट हुआ । उससे उन्होंने कहा कि जाओ दक्ष का यज्ञ विध्वंस कर दो । उन गणों ने जाकर दक्ष का यज्ञ विध्वंस कर दिया । दक्ष का सिर काटकर हवन में डाल दिया । भृगु की दाढ़ी नोच ली । पूषा के दाँत तोड़ दिए और मित्र की आँख निकाल लिए । ऐसे खण्ड-खण्ड कर दिए ।

समाचार सब संकर पाए । बीरभद्रु करि कोप पठाए ॥
जग्य बिधंस जाइ तिन्ह कीन्हा । सकल सुरन्ह बिधिवत फलु दीन्हा॥

इस तरह से यज्ञ का विध्वंस हो गया । बड़ी कठिनाई हुई । कहा कि भगवान् शङ्कर ने यज्ञ का विध्वंस क्यों किया ? श्रीशिवमहिम्नः स्तोत्र में आता है —

क्रियादक्षो दक्षः क्रतुपतिरधीशस्तनुभृता-
मृषीणामार्त्विज्यं शरणद सदस्याः सुरगणाः ।
क्रतुभ्रेषस्त्वत्तः क्रतुफलविधानव्यसनिनो
ध्रुवं कर्त्तुः श्रद्धाविधुरमभिचाराय हि मखाः ॥

कहते हैं कि दक्ष यज्ञों का स्वामी था । तीनों लोकों का स्वामी था। आप ईश्वर हैं जो यज्ञों का फल प्रदानं करने वाले हैं पर आपने उस यज्ञ का विध्वंस क्यों कर दिया ? बोले कि वह यज्ञ श्रद्धारहित था । द्वेषवश किया गया यज्ञ था। यदि किसी दुर्भावना से यज्ञ किया जाता है तो वह अभिचार का हेतु होता है । यज्ञ करने वाले का ही नाश कर देता है । यही सिद्धान्त है ।

शासन करके प्रसन्न हो जाना ये प्रभु का स्वभाव होता है । रामायण में एक चौपाई है ।

साँसति करि पुनि करहिं पसाऊ । नाथ प्रभुन्ह कर सहज सुभाऊ ॥

एक बात याद आ गई हमको । पहले नरसिंहपुर जिले में मद्यनिषेध था । नशामुक्ति थी । यहाँ कोई नशा नहीं कर सकता था । एक पण्डित जी थे । वे नशैल हो गए । मदक पीने लगे । पुलिस उनको पकड़कर ले गई। मजिस्ट्रेट के सामने कहा कि यह मदक पीता है जबकि यहाँ निषेध है तो मजिस्ट्रेट सजा देने लगा । पण्डित रामायणी था । उसने कहा —

साँसति करि पुनि करहिं पसाऊ । नाथ प्रभुन्ह कर सहज सुभाऊ ॥

यह आपका स्वभाव है शासन करके प्रसन्न हो जाना । मजिस्ट्रेट ने कहा कि आगे ऐसा काम मत करना और कहकर छोड़ दिया लेकिन काम उन्होंने फिर वही किया । पकड़ाया तो फिर उसी मजिस्ट्रेट के सामने पड़ गया तो फिर यही चौपाई बोला । अब मजिस्ट्रेट ने कहा —

जौं नहिं दंड करौं खल तोरा । भ्रष्ट होइ श्रुतिमारग मोरा ॥

उस पण्डित को सजा दे दी । कहने का मतलब यह है कि ऐसे लोगों को सजा दी जाती है । फिर भगवान् शङ्कर प्रसन्न हो गए । बोले कि दक्ष का मस्तक तो जल गया अब बकरे का सिर लगा दो । सिर लग गया। पूषा यजमान के दाँत से खाए, मित्र के नेत्रों से देखे और बकरे की दाढ़ी भृगु को मिल जाए। इस तरह से प्रार्थना से फिर यज्ञ में शङ्कर जी पधारे । बल बल करने लगा बं बं । बं बं करने से भगवान् शङ्कर प्रसन्न होते हैं । बकरे के मुख से दक्ष ने भगवान् शङ्कर की स्तुति की । ब्रह्मा, विष्णु, महेश तीनों वहाँ पर प्रकट हुए और बोले कि हम तीनों में कोई अन्तर नहीं है । सृष्टि करने से हमारा नाम ब्रह्मा हो जाता है, पालन करने से हम विष्णु कहलाते हैं और संहार करने से हम रुद्र कहलाते हैं । अस्तु ।

सती ने अपने शरीर का त्याग कर दिया । अब शङ्कर जी सती का शरीर लेकर उन्मत्त होकर इधर-उधर जाने लगे । कभी आकाश में उछालते कभी अन्तरिक्ष में उछालते । भगवान् विष्णु ने सोचा कि सती का शरीर ही शक्ति का स्रोत है । कहीं यह अन्तरिक्ष में न चला जाए तो उन्होंने अपने सुदर्शन चक्र से सती के शरीर के 51 टुकड़े कर दिए । शरीर का जो टुकड़ा जहाँ गिरा वहाँ पर उस-उस नाम का शक्तिपीठ बन गया । 51 शक्तिपीठ हो गए । इस तरह से भगवान् शङ्कर बिना सती के रहने लगे । वैराग्यपूर्ण जीवन बिता रहे हैं । इधर तारकासुर उत्पन्न हो गया । तारकासुर भगवान् शङ्कर के बेटे से ही मारा जाएगा तो देवताओं ने भगवती से प्रार्थना की ।

हम लोग मानते हैं कि जो भौतिक पदार्थ हैं उनका एक अधिष्ठातृ देवता होता है । पर्वत का भी अधिष्ठातृ देवता पर्वतराज हिमालय है । उसने जगदम्बा की आराधना की । भगवती को हिमालय ने प्रसन्न कर लिया ।

भगवती प्रकट हुईं । सब देवता वहाँ थे । उन्होंने हिमालय को ज्ञान का उपदेश देना प्रारम्भ किया ।

उन्होंने हिमालय को बताया कि सृष्टि के प्रारम्भ में एक अद्वितीय अनन्त अखण्ड मैं ही थी । मेरे अतिरिक्त और कुछ भी नहीं था । इसका अर्थ यह है कि मैं निर्विकार, निराकार, अखण्ड, अद्वितीय, सजातीय, विजातीय, स्वगतभेदशून्य ब्रह्मरूप मैं ही सृष्टि के प्रारम्भ में थी ।

अहमेवासमेवाग्रे नान्यद् यद् सदसद् परं ।

मुझसे भिन्न कोई नहीं था । इसलिए मैं अनन्त, अद्वितीय, सजातीय, विजातीय, स्वगतभेदशून्य केवल मैं ही थी । सजातीय भेद क्या है, विजातीय भेद क्या है ? और स्वगत भेद क्या है ? यह समझना चाहिए । वृक्ष-वृक्ष का भेद सजातीय, वृक्ष और पत्थर का भेद विजातीय और वृक्ष में शाखा-प्रशाखा और पत्तों का जो परस्पर भेद है वह स्वगत भेद है । एक ही वृक्ष के एक पत्ते का दूसरे पत्ते से, फूल का पत्ते से जो भेद है वह स्वगत भेद है । इन भेदों से किसी वस्तु का अन्त होता है । लेकिन ब्रह्म का कोई सजातीय नहीं है । यदि कहा जाए कि जीव ब्रह्म से भिन्न है लेकिन वास्तव में देखा जाए तो जीव और ब्रह्म में कोई भेद ही नहीं है । यदि यह कहा जाए कि जगत् का और ब्रह्म का भेद है तो यह भी नहीं बनता क्योंकि जगत् का कारण ब्रह्म में रहने वाली एक अनिर्वचनीय माया है । उस माया के कारण इस जगत् की उत्पत्ति होती है । ब्रह्म में रहने वाली माया ब्रह्म से पृथक् नहीं है । वस्तुतः जो माया है उसी को अविद्या कहते हैं, उसी को अज्ञान कहते हैं, उसी को प्रकृति कहते हैं । यह सत् नहीं है । क्योंकि अविद्या या अज्ञान का ज्ञान से नाश हो जाता है । जिसका बाध हो जाता है वह सत् नहीं होता । अब असत् भी नहीं कह सकते । इसलिए क्योंकि उसकी प्रतीति हो रही है । जैसे आकाश का फूल, बन्ध्या का पुत्र, खरगोश की सींग नहीं है । किसी को दिखाई नहीं पड़ता लेकिन जगत् तो दिखाई पड़ता है । जब दिखाई पड़ता है तो इसको हम असत् भी नहीं कह सकते । सत् नहीं कह सकते क्योंकि इसके कारण अविद्या का ज्ञान से नाश हो जाता है । सत् भी नहीं असत् भी नहीं। यदि सदसत् कहा जाए तो जैसे तेज और तिमिर, जैसे प्रकाश और अन्धकार

दोनों एक साथ नहीं रह सकते उसी तरह सत् असत् दोनों एक साथ नहीं रह सकते । ब्रह्म से भिन्न होकर माया न सति है न असति है न सदसती है । इसी को पुल्लिङ्ग में कहें तो न सत् है, न असत् है और न ही सदसत् है । यह अनिर्वचनीय है ।

सत्वासत्वाभ्यां वक्तुम् अनर्हः ।

अविचारित रमणीया एक माया शक्ति है । जो वस्तु सत् होती है वह भेद करती है । जो मिथ्या होती है उससे भेद नहीं होता । जैसे हमको रस्सी में सर्प दिखाई पड़ा । सीपी में चाँदी दिखाई पड़ गई । आप कहें कि साँप से रस्सी भिन्न है । अरे साँप हो तब न भिन्न हो । लेकिन जब आप कहते हैं कि रस्सी है तो इसका अर्थ है कि वहाँ पर कुछ है तो उसे सत् कह सकते हैं लेकिन बाध हो जाता है इसलिए सत् नहीं है । दिखता है इसलिए असत् नहीं कह सकते । दोनों नहीं है क्योंकि परस्पर विरुद्ध है । इसलिए वह न सत् है, न असत् है, न भिन्न है, न अभिन्न है, न भिन्नाभिन्न है । अनिर्वचनीय है । अनिर्वचनीय को ही मिथ्या कहते हैं ।

मिथ्या शब्दो अनिर्वचनीयता वचनः ।

जब वेदान्ती कहता है कि **ब्रह्म सत्यं जगन्मिथ्या** तो लोग पूछते हैं कि कैसे मिथ्या है महाराज ! एक ने कहा कि अगर जगत् मिथ्या है तो हमारा सिर दीवार से पटकते हैं । सिर न फूटे तो मिथ्या है । लेकिन यहाँ तो यह कह रहे हैं कि सिर भी मिथ्या, दीवाल भी मिथ्या और उसका टूटना भी मिथ्या । मिथ्या का अर्थ बताया कि जिसका विचार से बाध हो जाए । विचार करने पर जो न रहे उसको मिथ्या कहते हैं । रामचरितमानस में कहा गया है—

झूठेउ सत्य जाइ बिनु जानें । जिमि भुजंग बिनु रजु पहिचाने॥
जेहि जानें जग जाइ हेराई । जागें जथा सपन भ्रम जाई ॥

जिस परमात्मा को न जानने के कारण झूठा जगत् भी सच्चा प्रतीत होता है, जैसे रस्सी को न जानने के कारण झूठा सर्प भी सच्चा प्रतीत होता है, जिसको जान लेने पर जगत् का पता नहीं लगता जैसे जागने पर स्वप्न का पता नहीं लगता । आप जब सो जाते हैं तो आप स्वप्न देखते हैं । स्वप्न में

आपको आपके मरे हुए माता-पिता मिल जाते हैं । दूर देश में रहने वाला आपका मित्र मिल जाता है । शत्रु भी दिखते हैं । शेर बाघ भी देखते हैं । कई तरह के दृश्य आप देखते हैं । जब जागते हैं तो सब कहाँ चले गए ? वहाँ कुछ भी नहीं है । आप देखिए कि बहुत से लोग कलकत्ते से यहाँ आए हैं। रेल में बैठकर आए होंगे । अगर नींद आ गई तो स्वप्न देखते हैं कि बहुत बड़ा मैदान है । रेल चल रही है । हम उसमें बैठे हैं । रेल हमारे भीतर दिख रही है कि नहीं ? इतनी जगह है हमारे भीतर ? बिना हुए ही यह सब दिखाई पड़ रहा है लेकिन जागने पर उसका पता नहीं चलता । इसी तरह से आप इस संसार में सोए हुए हो । जिस समय जाग जाओगे इस संसार का पता नहीं चलेगा । रामचरितमानस में आया है कि यह संसार स्वप्न के समान है। जैसे मनुष्य स्वप्न में देखता है कि हमारा सिर कट गया ।

जौं सपनें सिर काटै कोई । बिनु जागें दुख दूरि न होई ॥

स्वप्न में देखा कि शत्रुओं ने हमारा सिर काट दिया । अब हम सिर कटे हो गए । हम मर गए । अब हमारे बच्चों का क्या होगा ? अब हमारे शरीर को लोग उठाकर श्मशान में ले जायेंगे । जलायेंगे । परिवार का क्या होगा ? किसी ने कहा उठ । जैसे ही उठा तो सिर जहाँ का तहाँ ।

जासु कृपाँ अस भ्रम मिटि जाई । गिरिजा सोइ कृपाल रघुराई॥

जिसकी कृपा से यह भ्रम मिट जाता है वही भगवान् है । भगवान् ही गुरु के रूप में आकर भ्रम मिटा देते हैं । इसलिए भगवान् शङ्कराचार्य जी ने लिखा है —

क्षणमपि सज्जनसंगतिरेका भवति भवार्णवतरणे नौका ।

क्षणमात्र की भी सज्जनों की संगति भव से पार कराने वाली नौका बन जाती है । क्षणमात्र की संगति यही है कि सन्त-महात्मा स्वयं जगे हुए हैं। वे सोतों को जगाते हैं । जब जाग जाता है प्राणी तो उसे संसार का पता नहीं लगता है । इसलिए संसार नाम की कोई भी चीज ब्रह्म में भेद उत्पन्न नहीं करती । यही ब्रह्म सृष्टि के प्रारम्भ में था और बाद में भी यही रहेगा और अद्वितीय होने के कारण उसकी कोई उपमा नहीं है । कोई दूसरा उसके समान हो तब तो उसकी उपमा दी जाए । एक ही है । माता जगदम्बा अपने होने

वाले पिता हिमालय को उपदेश दे रही हैं । इसका नाम है माता गीता। अभी तो हमने संक्षेप में सुनाया । आगे विस्तार से सुनायेंगे । अब समय हो गया है । थोड़ा सा भगवान् का नाम लीजिए ।

श्री राम जय राम जय जय राम
प्यारे जरा तो मन में विचारो क्या साथ लाए अरु ले चलोगे
जाता सदा साथ यही पुकारो गोविन्द दामोदर माधवेति
गोविन्द दामोदर माधवेति हे कृष्ण हे यादव हे सखेति
श्रीकृष्ण गोविन्द हरे मुरारे हे नाथ नारायण वासुदेव
श्रीकृष्ण गोविन्द हरे मुरारे हे नाथ नारायण वासुदेव
धर्म की जय हो । अधर्म का नाश हो ।
प्राणियों में सद्भावना हो । विश्व का कल्याण हो ।
गोमाता की जय हो । गोहत्या बन्द हो ।
हर हर महादेव ।

अष्टम दिवस

सृष्टि के आदि में एकमात्र जगदम्बा ही थीं

समुपस्थित विद्वद्वृन्द ! देवियो ! सज्जनो !

देवी भागवत में भगवती राजराजेश्वरी देवी अपने भावी पिता हिमालय को ज्ञान का उपदेश देती हैं । वहाँ पर जो देवता आदि विद्यमान हैं उनके समक्ष भगवती राजराजेश्वरी यह बतलाती है कि **अग्रे** माने इस सृष्टि के प्रारम्भ में केवल मैं ही थी । और मैं **एकमेवाद्वितीयम्** । मेरे सिवाय कोई दूसरा नहीं था । केवल मैं ही थी । हमारे उपनिषदों में ब्रह्म का वर्णन है उसी ब्रह्म का अपने आत्मरूप से भगवती वर्णन कर रही है । वेदों में लिखा है कि इस सृष्टि के पहले एकमेव अद्वितीय ब्रह्म ही था । उसके सिवाय कोई दूसरी वस्तु नहीं थी । इसका अर्थ यह निकला कि सृष्टि के प्रारम्भ में एकमात्र मैं ही हूँ, एक अखण्ड अद्वितीय ब्रह्म मैं ही हूँ और सृष्टि के अन्त में भी सिर्फ मैं ही रहूँगी ।

आदौ अन्ते च यन्नास्ति मध्यकालेपि तत्तथा ।

जो आदि और अन्त में नहीं है वह मध्य में भी नहीं है । उदाहरण के लिए आप समझ लीजिए कि लोग शक्कर के खिलौने बनाते हैं । खांड़ के खिलौने । उसे कई आकार दे देते हैं । उस शक्कर को गलाकर जैसे-जैसे साँचे में डाल दिया जाए वैसा ही उसका आकार बन जाता है । हाथी बन गया, घोड़ा बन गया, रुपया बन गया, कहीं कुछ और बन गया । तो बच्चे खेलते हैं । मेरे पास हाथी है, तेरे पास घोड़ा है और अपने यहाँ भी होली के समय शक्कर की माला लोग पहनाते हैं । उसमें भी कई तरह के आकार होते हैं । लड़के लड़ते हैं और कहते हैं मेरे पास हाथी है, तेरे पास घोड़ा है। लेकिन सच पूछा जाए तो हाथी घोड़े के पहले क्या था ? शक्कर थी और

जब इसको अन्त में देखोगे तो भी शक्कर है । बीच में जो हाथी-घोड़े दिख रहे हैं वे नाममात्र है । वह भी शक्कर है । इस तरह से एक अद्वितीय ब्रह्म ही सब कुछ था । इस दृष्टान्त से आप समझ सकते हैं । सोने से मुकुट, कुण्डल आदि आभूषण बनते हैं । पहले भी सोना और बाद में भी सोना और बीच में जो कटक, कुण्डल, मुकुट दिखाई पड़ते हैं वे भी सोना ।

यहाँ परमात्मा का स्वरूप वर्णित हो रहा है । जब वह एक ही है तो यह अनेकात्मक जगत् क्यों प्रतीत हो रहा है ? कैसे प्रतीत हो रहा है? यह संसार कैसे आ गया ? कैसे बन गया ? जीव-ईश्वर का भेद कैसे हो गया? इसके सम्बन्ध में बतलाया जाता है कि जो भगवान की माया है, जो भगवान् से न भिन्न है, न अभिन्न है और न भिन्नाभिन्न है, न सत् है, न असत् है और न सदसत् है, उस माया में तीन गुण हैं —

सत्त्वगुण, रजोगुण और तमोगुण । सत्त्वगुण जो है वह शुद्ध होता है। रजोगुण और तमोगुण से मिला जो सत्त्वगुण वह नहीं । जिसमें केवल सत्त्वगुण रहता है, उस सत्त्व गुण में प्रतिबिम्बित जो आत्मा है वह ईश्वर है। रजोगुण और तमोगुण से मिला जो सत्त्वगुण है, उसमें जो प्रतिबिम्बित है वह जीव है । इस तरह से जीव और ईश्वर का भेद दिखाई पड़ता है । इसी बात को यदि आप मानस से समझना चाहे तो रामचरितमानस में एक प्रसंग आता है —

एक बार प्रभु सुख आसीना । लछिमन बचन कहे छलहीना॥

एक बार भगवान् श्रीराम सुख से बैठे हुए थे तो लक्ष्मण जी ने उनसे प्रश्न किया । यहाँ **सुख आसीना** बतलाया । इसका मतलब यह है कि जब गुरु बैठे हुए हों शान्ति से तब प्रश्न करना चाहिए । उनको लघुशंका लगी हो प्रश्न करने लगे, वो कहीं जा रहे हैं और प्रश्न करने लगे तो यह प्रश्न करने का ढंग नहीं है । जब वो शान्ति से बैठे हों तब प्रश्न करना चाहिए और **छलहीना** । कुछ लोग प्रश्न करते है गुरु की परीक्षा लेने के लिए कि देखें कि महाराज कुछ जानते हैं कि नहीं जानते हैं ? हर गाँव में ऐसे खल लोग होते हैं । जहाँ कोई मान्य महात्मा गया, उससे लोग ऐसा प्रश्न करते हैं कि वो उत्तर न दे सकें । लोग फिर उसका उपहास करते हैं । ऐसा नहीं करना

चाहिए । आप जानने की इच्छा से पूछिये ।

एक बार प्रभु सुख आसीना । लछिमन बचन कहे छलहीना॥
सुर नर मुनि सचराचर साईं । मैं पूछउँ निज प्रभु की नाईं ॥
मोहि समुझाइ कहहु सोइ देवा । सब तजि करौं चरन रज सेवा॥

भगवान् ने कहा कि अच्छा पूछो । लक्ष्मण जी ने कहा —

कहहु ग्यान बिराग अरु माया । कहहु सो भगति करहु जेहिं दाया।
ईश्वर जीव भेद प्रभु सकल कहौ समुझाइ ।
जातें होइ चरन रति सोक मोह भ्रम जाइ ॥

महाराज ज्ञान बताइए, वैराग्य बताइए और माया बताइए और ईश्वर-जीव का जो भेद है वो बताइए, भक्ति का स्वरूप बताइए । जब लक्ष्मण जी ने प्रश्न किया तो भगवान् ने उसका उत्तर दिया । भगवान् बोलते हैं —

गो गोचर जहँ लगि मन जाई । सो सब माया जानेहु भाई ॥

गो माने इन्द्रियाँ और गोचर माने इन्द्रियों के विषय । पाँच ज्ञानेन्द्रियाँ हैं । आँख, कान, नाक, जीभ, त्वक् और इनके विषय भी अलग-अलग हैं। आँख का विषय रूप, कान का विषय शब्द, जिह्वा का विषय रस, नाक का विषय गन्ध और त्वक् का विषय है स्पर्श । इन्द्रियाँ और इन्द्रियों के विषय, जहाँ तक मन जाता है सब मायाजाल है । ये सब माया है । यहाँ माया कहने का अभिप्राय यह है कि माया के कार्य होने के कारण इनको भी माया कहा जाता है । लेकिन जिससे ये उत्पन्न हुए हैं वो माया दो प्रकार की है — एक विद्या एक अविद्या ।

तेहि कर भेद सुनहु तुम्ह सोऊ । बिद्या अपर अबिद्या दोऊ ॥

हमने आपको अभी बतलाया कि त्रिगुणात्मिका माया में जो शुद्ध सत्वगुण है उसमें जो प्रतिबिम्ब पड़ता है उसका नाम है ईश्वर और रजोगुण तमोगुण से मिली हुई मलिन सत्त्वमयी जो माया है इसको अविद्या कहा जाता है । उसमें प्रतिबिम्ब पड़ने वाला जो चैतन्य है उसका नाम जीव है तो ये जीव और ईश्वर का भेद उपाधि से हुआ । बात तो एक ही हुई तो जैसे आकाश में आकाश । एक लेकिन घड़े के भीतर का आकाश घटाकाश कहलाता है और मठ के भीतर का आकाश मठाकाश कहलाता है और बाहर का आकाश

बाह्याकाश कहलाता है । महाकाश ही घटाकाश और मठाकाश के रूप में प्रस्तुत होता है । घट मठ की उपाधि इसी तरह से है । एक अद्वितीय अखण्ड चैतन्य ही माया अविद्या की उपाधि से जीव ईश्वर के रूप में प्रतीत होता है। वास्तव में दोनों में कोई भेद नहीं है । भेद का एक स्वरूप यह भी बन जाता है कि ईश्वर, जो माया में प्रतिबिम्बित चैतन्य है उसको अपने अधिष्ठान का विस्मरण नहीं होता । ईश्वर ये सदा अनुभव करते हैं कि वे शुद्ध सच्चिदानन्द परब्रह्म हैं । उनको अपने स्वरूप का विस्मरण नहीं होता, स्वरूप उनका ढँका नहीं होता और जीव का ढँक जाता है । जीव अपने आपको भूल जाता है मलिन सत्त्व के कारण । निरावरण ब्रह्म को जानने वाला जो तत्व है वह ईश्वर और जो उसको न जानने वाला है वह जीव । यही बात है । जीव और ईश्वर के भेद का कारण वास्तव में नहीं है लेकिन माया और अविद्या की उपाधि के कारण जीव और ईश्वर में भेद है। अब इस संसार की रचना ईश्वर से होती है । जब परब्रह्म परमात्मा माया से विशिष्ट हो जाता है तो उस माया के द्वारा उसके मन में तितिक्षा होती है कि हम संसार को बनाएँ ।

एकोहं बहुस्याम प्रजायेय ।

मैं अकेला हूँ, बहुत हो जाऊँ । परमात्मा में बहुभवन का संकल्प हुआ । परमात्मा से पहले आकाश उत्पन्न हुआ, आकाश में एक गुण है शब्द, शब्दगुणक आकाश से वायु उत्पन्न हुआ । वायु में दो गुण हैं - शब्द और स्पर्श । फिर उससे अग्नि उत्पन्न हुई । उसमें तीन गुण हैं । शब्द, स्पर्श और रूप । उससे जल उत्पन्न हुआ । उसमें चार गुण हैं - शब्द, स्पर्श, रूप और रस । जल से पृथ्वी उत्पन्न हुई । उसमें एक गुण और बढ़ गया गन्ध। इस तरह से ये पाँच तत्व उत्पन्न हुए । फिर इनका पञ्चीकरण हुआ। पञ्चीकरण यूँ हुआ कि पाँचों को आधा-आधा दो । आधा आकाश, आधा वायु, आधा जल, आधी अग्नि, आधी पृथ्वी । जो आधा है वो अपने-अपने पास रखेगे और बाकी जो आधा है उसके चार भाग होंगे । इस प्रकार आकाश का आधा भाग आकाश के पास और बाकी बचे आधे भाग के चार भाग में से एक भाग वायु को, दूसरा अग्नि को, तीसरा जल को और चौथा दिया पृथ्वी को । फिर वायु के दो भाग हुए । एक भाग वायु का अपने पास रहा और बाकी आधे

भाग में से एक भाग मिला आकाश में, दूसरा मिला अग्नि में, तीसरा मिला जल में और चौथा मिला वायु में । फिर इसी तरह अग्नि के दो भाग हुए । आधा अग्नि के पास रहा और बाकी आधे भाग के चार भाग हुए । एक मिला आकाश को, दूसरा मिला वायु को, तीसरा मिला जल को और चौथा मिला पृथ्वी को । फिर इसी तरह से पृथ्वी के दो भाग हुए तो उसमें जल का आधा भाग जल के पास रहा और बाकी आधे के चार भाग हुए । एक आकाश को मिला, दूसरा वायु को, तीसरा अग्नि को और चौथा पृथ्वी को । इसी तरह से पृथ्वी के दो भाग हुए । आधा पृथ्वी का पृथ्वी के पास रहा । दूसरे आधे भाग के चार भाग हुए । एक आकाश को, दूसरा वायु को, तीसरा अग्नि को और चौथा जल को ।

इन पञ्चीकृत पञ्चमहाभूतों से विराट् की उत्पत्ति हुई । इसके पहले ये पञ्चमहाभूत अपञ्चीकृत थे माने पाँचों पाँचों में नहीं मिले थे तब इनके शुद्ध सात्त्विकांश से पाँच ज्ञानेन्द्रियाँ उत्पन्न होती हैं । कौन-कौन सी पाँच इन्द्रियाँ हैं ? श्रोत्र, त्वक्, चक्षु, रसना और घ्राण माने कान, त्वक्, आँख, जीभ और नाक । ये पाँच ज्ञानेन्द्रियाँ व्यष्टि सात्त्विकांश से उत्पन्न हुई और समष्टि सात्त्विकांश से अन्तःकरण उत्पन्न हुआ । मन, बुद्धि चित्त, अहंकार - ये अन्तःकरण हैं । जब संकल्प-विकल्प हम कर सकते हैं तो उसको हम मन कहते हैं और जब निश्चय करते हैं तो उसका नाम बुद्धि हो जाता है । जब स्मरण करते हैं, अनुसंधान करते हैं चिंतन करते उसका नाम चित्त हो जाता है । जब हम अहंकार करते हैं तो उसका नाम अहंकार हो जाता है । यह अन्तःकरण समष्टि सात्त्विकांश से उत्पन्न हो जाता है । फिर व्यष्टि राजसिकांश से पाँच ज्ञानेन्द्रियाँ उत्पन्न होती हैं । पाँच ज्ञानेन्द्रियाँ कौन-कौन हैं ? हाथ, पैर, वाणी, उपस्थ और गुद । ये पाँच कर्मेन्द्रियाँ व्यष्टि राजसिकांश से उत्पन्न होती हैं और समष्टि से प्राण उत्पन्न होता है । प्राण की पाँच वृत्तियाँ हैं । प्राण, अपान, व्यान, उदान और समान ।

हृदि प्राणो गुदेऽपानः समानो नाभिमण्डले ।
उदानः कण्ठदेशीयो व्यानः सर्वशरीरगः ॥

हृदय में प्राण, गुदा में अपान, नाभि में समान, कण्ठदेश में उदान

और व्यान सारे शरीर में रहता है । इस तरह से पाँच प्राण हो गये । इस तरह से देखा जाए तो इनसे लिंग शरीर बन गया । पंचज्ञानेन्द्रियाँ, पंचकर्मेन्द्रियाँ मिलाकर हो गए दस । पाँच प्राण हुए, दस पाँच पन्द्रहं और मन, बुद्धि, चित्त, अहंकार मिला लो तो हो गए उन्नीस । और यदि दो ही रखो मन, बुद्धि तो सत्रह । इन सत्रह तत्त्वों से लिंग शरीर बना जिसका नाम सूक्ष्म शरीर है।

सूक्ष्म शरीर ईश्वर का भी है और जीव का भी है । फिर ये पञ्चीकृत हुआ तो पञ्चीकृत से ब्रह्माण्ड हुआ । ईश्वर का स्थूल शरीर ब्रह्माण्ड है और सूक्ष्म शरीर सूत्रात्मा हिरण्यगर्भ है और मूल स्वरूप वह ईश्वर है । इधर जीव का स्थूल शरीर अपना ये पञ्चभूतात्मक शरीर है, सूक्ष्म शरीर मन, बुद्धि, चित्त, अहंकार और पाँच प्राण है और कारण शरीर अविद्या है । तीन शरीर ईश्वर के हैं और तीन शरीर जीव के हैं । ईश्वर के समष्टि है और जीव के व्यष्टि।

आप समष्टि व्यष्टि का अर्थ नहीं समझते होंगे । जैसे मटर की राशि लगी हुई है तो वह कहलाएगी समष्टि और उसमें से एक मटर का दाना निकालो तो वह हो गया व्यष्टि । सबको मिलाना समष्टि और एक को लेना व्यष्टि । हम सब लोग व्यष्टि के अंश हैं । समष्टि ईश्वर है विराट् । इस तरह से व्यष्टि समष्टि भेद से, उपाधिभेद से जीव ईश्वर हुए और माया से ये संसार निर्मित हुआ । अब इस संसार की उत्पत्ति हुई तो इसमें जीव खड़े हो गये

यह माना जाता है कि संसार पहली बार उत्पन्न नहीं हुआ है । यह तो अनादि काल से चला आ रहा है । जीव ईश्वर का भेद भी अनादि काल से चला आ रहा है । अनादि काल से चला आ रहा है इसलिए जीव अविद्या काम कर्म में फँसा हुआ है । अविद्या माने अपने स्वरूप को भूल गया और काम माने उसके मन में संसार की इच्छा हुई । जब इच्छा हुई तो उसके लिए कर्म किया । आप जब कोई भी इच्छा करोगे तो बैठे नहीं रह सकते । इच्छा होते ही आपको कर्म करना पड़ेगा । अविद्या, काम, कर्म जीव के अन्दर आ गये तो कर्म का फल भोगने के लिए जन्म लेना पड़ा । जन्म लिया तो वही अविद्या, काम, कर्म के संस्कार भी साथ में आ गए । कर्म किया, फिर जन्म लिया और फिर कर्म किया फिर जन्म लिया । इस जन्म मरण के चक्र में ये

जीव तब से पड़ा हुआ है । इसी को विनय पत्रिका में गोस्वामी तुलसी दास जी ने बताया —

जब से जिव हरि ते विलगान्यो, तब ते देह गेह निज मान्यो ।
मायावश स्वरूप बिसरायो, तब ते ही नाना दुख पायो ॥

जीव माया के वश में होकर अपने स्वरूप को भूल गया इसलिए नाना प्रकार के दुःख भोग रहा है । है ब्रह्म, लेकिन अपने आपको भूल गया है । भूल गया इसलिए दुःख हो रहा है । इसमें दृष्टान्त दिया जाता है कि व्याघ्रकुलवर्धित राजकुमारवत् ।

पहले जमाने में जब रेल मोटर आदि नहीं थे । लोग तीर्थ यात्रा के लिए निकलते थे तो कोई पालकी में, कोई बैलगाड़ी में, कोई पैदल और भीड़ की भीड़ इकट्ठी होती जाती थी । अभी भी गाँवों के लोग रेल में जाते हैं, मेले ठेले में जाते हैं तो साथ में मिलके जाते हैं । बीच-बीच में रुकते-रुकते जाते थे । उन तीर्थयात्रियों में एक रानी भी थी और उसका छोटा बेटा था गोद में। एक जगह सब लोग ठहरे तो वहाँ डाकू आ गए । डाकुओं ने सबको लूटना शुरू किया । रानी से भी आभूषण वगैरह सब लूट लिये। उसका बच्चा भी ले गये । किसी तरह से रानी की जान बच गई । अब राजा को पता लगा। खूब खोज कराई लेकिन राजा के बेटे का कुछ पता नहीं चला।

रानी अपने घर लौटकर आ गई । कई वर्ष बीत गये । एक बार कुछ डाकुओं को पकड़कर सिपाही लोग लाये । राजदरबार में राजा अपने सिंहासन पर बैठे थे । बगल में मंत्री बैठा था और सब लोग बैठे थे । डाकू सामने खड़े किये गये । हाथ में हथकड़ी धरी है । पैर में बेड़ी है और सब डरे हुए थे कि न जाने क्या होगा ? बड़े भयानक उनके मुख थे । बड़े-बड़े बाल-दाढ़ियाँ थीं । उन्हीं में एक सुन्दर गौर वर्ण का डाकू था । देखने में बड़ा अच्छा दिखलाई पड़ता था । तो राजा ने अपने मंत्री को बुलाया । कहा कि इसका मुख तो कुछ अलग सा दिखता है । मंत्री ने कहा - हाँ महाराज! अलग तो लगता है और आदमी जवान भी है । राजा ने कहा कि अपने बेटे को डाकू लोग ले गए थे । कहीं ये वही तो नहीं है ? इधर डाकू डर रहा है कि हमारी तरफ राजा इतना घूर-घूरकर देख रहा है । लगता है सबसे पहले

फाँसी हमको ही लगेगी । वह काँप रहा था । इतने में रानी को बुलाया गया। रानी आई । रानी ने जैसे ही उस बालक को देखा तो उसके स्तनों से दूध निकलने लगा । राजा ने समझ गया कि हमारा बेटा है उसको बुलाया कि इधर आओ । वो डरते-डरते आया । राजा ने पूछा कि तुम कौन हो ? उसने कहा कि हम तो नहीं जानते हम कौन हैं ? राजा ने पूछा कि ये जो डाकू है ये तुम्हारे कौन हैं ? उसने कहा कि हमको पता नहीं कि ये कौन हैं । हम तो इन्हीं के बीच में रहे, इनके बीच में ही बड़े हुए । राजा ने पूछा कि तुम्हारे माँ-बाप का तुम्हे पता है ? उसने कहा कि हमको खुद का पता नहीं है । उन्होंने डाकुओं से पूछा कि भाई ! ये बालक तुम्हारे पास कहाँ से आया ? डाकू बोले कि एक बार तीर्थयात्री जा रहे थे । कोई रानी पालकी में थी । उसी से हमने इसको छीना था । बस निश्चय हो गया कि वह राजा का ही बेटा है तो उन्होंने कहा कि बेटा ! तुम डाकू नहीं हो, तुम राजकुमार हो । उसकी हथकड़ी-बेड़ी खुल गई और वो राजा की गोद में जाकर बैठ गया ।

इसी तरह से यह जीव डाकुओं के वेश में है । अज्ञानी लोगों में फँस गया है । अनेकों प्रकार के पंथ निकल रहे हैं । पंथों में पहुँच गया । पंथायियों ने इसको जीव बना दिया, संसारी बना दिया । किसी तरह से जब सद्गुरु इसको मिले और इसको बताया कि अरे तुम जीव नहीं हो, भाई ! तुम संसारी नहीं हो, तुम परब्रह्म परमात्मा हो । तुम अपने आपको भूल के संसारी बने हो तो वह कृतकृत्य हो गया । कहने का मतलब यह है कि ये जीव तभी से संसारी हो गया —

जब ते जिव हरि ते बिलगान्यो । तब ते देह गेह निज मान्यो।
मायाबस स्वरूप बिसरायो, तेहिं भ्रम ते नाना दुःख पायो ॥

भ्रम से ही इसे नाना प्रकार के दुःख हो रहे हैं । अविद्या काम कर्म के चक्र में ये पड़ा है । प्रलयकाल में यह सो जाता है । जैसे हम गहरी नींद में सो जाते हैं तो सोते समय तो कुछ नहीं रहता है लेकिन जब उठते हैं तो वैसे का वैसा ही संसार रहता है । वैसे ही प्रलयकाल में जीव अपने अविद्या काम कर्म को लेकर सोता है । संस्कार बने रहते हैं तो उनके लिए सृष्टि भगवान् बनाते हैं । सृष्टि क्यों बनाते है भगवान् ? एक कहने लगा कि

महाराज ! भगवान् अगर इस संसार को न बनाते तो बड़ा अच्छा होता । बना दिया तो हम लोग परेशान हो रहे हैं । हमने कहा कि भाई ! इसमें भगवान् की दया है । एक माँ थी । माँ का बेटा भूखा था । अपनी माँ से भोजन माँग रहा था, मैया हमको भोजन दो । माँ के पास भोजन नहीं था तो वो कहती थी कि हम व्यवस्था कर रहे हैं । इतने में बेटे को नींद लग गई । वो सो गया। माँ के पास गुलाब जामुन आ गया । किसी ने लाकर दिया और कहा कि तुम खा लो । उसने कहा कि मेरा बेटा भूखा सोया हुआ है। मैं अकेली कैसे खा लूँ ? अब उसने अपने बेटे को जगाया । बेटा उठो ! बेटा पैर पटककर बोला कि हमको क्यों जगाती हो ? सोने दो । माँ ने कहा, उठो, उठो और जबरदस्ती उठाया और बेटे के मुख में गुलाब जामुन डाल दिया । जब बेटे ने गुलाब जामुन खाया तो उसकी आँखों में चमक आई । तब माता को सन्तोष हुआ । इसी तरह परमात्मा ने इस संसार की रचना इसलिए की कि ये 84 लाख जन्म भोगते-भोगते जब मनुष्य बनेगा तो इसको मन, बुद्धि, इन्द्रिय, प्राण हम देंगे । मनुष्य शरीर को प्राप्त कर यह श्रोत्रिय ब्रह्मनिष्ठ सद्गुरु की शरण में जाएगा । पहले अपने मन को शुद्ध करेगा ।

संसार के स्वरूप को समझने पर वैराग्य होता है । जब तक संसार के स्वरूप का अनुभव न हो तब तक वैराग्य नहीं होता है । आप देखिए कि मनुष्य का मन सदैव संसार में मोहित रहता है । जब कुछ दिनों के बाद ठोकर लगती है, जब देखता है कि सब लोग छोड़ ही देते हैं । सब अपने स्वार्थ के साथी हैं । जब तक स्वार्थ रहता है तब तक लोग प्रेम करते हैं । और अगर स्वार्थ सिद्ध नहीं हुआ तो सब कुछ छोड़ देते हैं । आपके पास जब तक धन है सब आपके साथ मित्रता करेंगे । लेकिन जब आप निर्धन हो जाते हैं तब आपके जो बन्धु-बान्धव हैं वे भी आपसे घृणा करने लगते हैं । जब तक पैसा है तब तक लोग अपना रिश्ता-नाता बना लेते हैं । दूर का रिश्ता बनाते हैं । कहते हैं कि हमारे बहनोई हैं । जब सम्पत्ति चली गई और वही बोले कि हम तुम्हारे साले हैं तो कहेंगे दूर का है । पास का नहीं है । बने व्यक्ति के लोग साले भी बनने को तैयार हो जाते हैं और बिगड़े का कोई बहनोई भी बनने को तैयार नहीं होता । रास्तें में मिल जाए तो आँख फेर लेते हैं ऐसे जैसे

कि हमने देखा ही नहीं । ये हालत अर्जुन की हो जाती है । यह संसार की बात है । मनुष्य की परीक्षा हो जाती है । सूरदास जी ने कहा —

सुत वित नारी जानि स्वारथरत
न करु नेह इन ही ते ।
अन्तहु तोहि तजेंगे पामर
तू न तजे अबहीं ते ॥

अन्त में सब तुमको छोड़ देंगे । जब विपत्ति आएगी । बुद्धिमानी इसी में है कि तुम पहले ही छोड़ दो । एक जाट था । उसकी स्त्री हमेशा धमकाती रहती थी । कहती थी हम तेरा साथ छोड़ देंगे । हम दूसरा पति कर लेंगे । बेचारा जाट समझता था कि हममें क्या कमी है ? जो दुःख हो बताओ। हम दूर कर देंगे । छोड़कर मत जाओ । फिर भी कहती थी चले जायेंगे । एक दिन उसने पक्का इरादा बता दिया कि आज तो कुछ भी कहो हम चले ही जायेंगे । जाट ने सोचा कि हमारे रहते स्त्री चली जाए तो दुनिया में हमारी हँसी होगी । एक दिन वह मकान की छत पर चढ़ गया और बोला कि देखो गाँव वालों ! मेरी स्त्री बहुत दुष्ट है । हमने इसको छोड़ दिया है। वो तो छोड़कर जाने ही वाली थी लेकिन इसकी इज्जत रह गई । इसी तरह से जिनको इज्जत बचाना हो वे संसार से विरक्त हो जाएँ । सच्चा सुख पाने के लिए विरक्त हो जाए । गुरु के पास जाए ।

गुरु भी कई तरह के होते हैं । जो चेले के घर में आ गए और बैठे ही हैं वे गुरु नहीं गोरू हैं । स्वार्थ के लिए चेला बनाया उन्होंने । वे न तो स्वयं ही कुछ जानते हैं और न चेले को ही इससे कुछ मतलब है । उसने तो इसलिए कान फुँका लिया कि उसको गया जी जाना था । बिना गुरु बनाये गया जी जाओगे तो पुण्य नहीं मिलेगा । ऐसा किसी ने बता दिया तो इसलिए गुरु बनाया । जो मिल गया उन्हें बना लिया ।

गुरु सिख अन्ध बधिर कस लेखा ।
एक न सुनहि एक नहि देखा ।

एक सुनता नहीं और एक देखता नहीं । एक बार एक गुरु नया, अच्छा जोड़ा जूता पहनकर अपने शिष्य के यहाँ गया । शिष्य ने देखा कि

कुछ नहीं है खाने को और गुरुजी आ गए । उसने बड़े स्वागत से गुरु को बिठाला घर के भीतर और बाहर निकलकर अपनी स्त्री से कहा कि जरा इनका ध्यान रखो । उनका जूता उठाया और बाजार में बेच दिया । उससे जो रुपया मिला उसी से आटा, दाल, घी, शक्कर, मिर्च, मसाला सब खरीद लिया और आकर अपनी स्त्री को दिया । स्त्री ने बहुत बढ़िया भोजन बनाया । ऐसा स्वादिष्ट भोजन करके गुरु कहने लगे कि बड़ा सुन्दर भोजन बना है । चेला बोला कि आपके ही चरणों की कृपा है । ऐसे ही वे जब तक रहे तब तक भोजन बनवाकर देता रहा । जब-जब वे प्रशंसा करते थे तो यही कहता था कि आप ही के चरणों की कृपा है । अब जब वे जाने लगे तो खाने-पीने के बाद जो बचा था वो उनके चरणों में रख दिया । दक्षिणा भी हो गई । गुरु ने कहा कि हमारे जूते कहाँ गए ? तो चेला बोला कि महाराज ! इन्हीं की तो कृपा है । ऐसे गुरु और ऐसे चेले । एक अन्धा और एक बहरा । कहते हैं कि एक चेले ने किसी गुरु को थोड़ी सी दक्षिणा दी । गुरु को सन्तोष नहीं हुआ । कहने लगे कि अब तो यजमान आपकी दक्षिणा बहुत कम हो गई । यजमान ने भी सुना ही नहीं । गुरु देख ही नहीं रहा कि इस बेचारे की हालत क्या है ? किस हालत में उसने सेवा की है ? किसी तरह से दक्षिणा दी है। और वो शिष्य भी गुरु की बात सुन नहीं रहा है । गुरु कैसा होना चाहिए और शिष्य कैसा होना चाहिए । कहते हैं —

सिख तो ऐसा चाहिए जो गुरु को सरबस दे ।
गुरु भी ऐसा चाहिए जो शिख से कुछ न ले ।

दोनों निरपेक्ष हों । ऐसा निरपेक्ष गुरु तो ज्ञानी गुरु ही हो सकता है, सामान्य गुरु नहीं हो सकता । गुरु श्रोत्रिय ब्रह्मनिष्ठ होना चाहिए । इसलिए कि ज्ञान वही है जो शास्त्रसम्मत हो । जो शास्त्र से सम्मत नहीं वह ज्ञान नहीं, अज्ञान है । बहुत से लोग उपदेश देते हैं लेकिन उनके उपदेश में शास्त्र नहीं होता । मनमाना बोल रहे हैं । मनमाना नहीं चलेगा, हमारे वेद शास्त्रों में जो वर्णित है वो जब आपको सुनाई पड़ेगा तब आपको उसे मानना चाहिए । आजकल लोग कुछ भी बता देते हैं । कहते हैं कि ये करना चाहिए और ये नहीं करना चाहिए । पूछो कि कहाँ सुना है तो कहते हैं बस ! सुना है ।

जिसने बताया उससे पूछ तो लो कि कहाँ का बोल रहे हो ? किस पुराण का? किस वेद का ? किस शास्त्र का बोल रहे हो ? जब तक शास्त्र की बात न बताएँ तब तक विश्वास नहीं करना चाहिए । अस्तु !

जब वैराग्य होता है । गुरु की शरण में प्राणी जाता है तो गुरु उसको बतलाते हैं कि तुम कौन हो ? उसे उसके स्वरूप का बोध कराते हैं । गुरु कैसे बोध कराते हैं ? वे बतलाते हैं कि तीन अवस्थाएँ हैं । जाग्रत, स्वप्न और सुषुप्ति । इन्द्रियों से जब हम संसार को देखते हैं, विषयों को देखते हैं, इस अवस्था को जागृत अवस्था कहते हैं । हमारी अभी की अवस्था जागृत अवस्था है ।

इसके बाद जब हम सो जायेंगे तो स्वप्न देखेंगे तो वो स्वप्नावस्था है । वहाँ इन्द्रियाँ सो जाती हैं और केवल मन रहता है । फिर जब गाढ़ी नींद में सो जाते हैं तो कुछ भी नहीं दिखता । जाग्रत अवस्था में स्वप्न नहीं है, स्वप्न में जागृत अवस्था नहीं है । जाग्रत और स्वप्न ये दोनों सुषुप्ति में नहीं है । लेकिन जाग्रत, स्वप्न और सुषुप्ति इन तीनों को जानने वाला आत्मा है। इन तीनों का परस्पर व्यभिचार है और इसको जानने वाले आत्मा का अव्यभिचार है । वो एकरस है । हम वह हैं जो तीनों अवस्थाओं में रहते हैं। जाग्रत अवस्था का अभिमानी विश्व है, स्वप्नावस्था का अभिमानी तैजस् और सुषुप्ति अवस्था का अभिमानी प्राज्ञ है । इसी तरह से समष्टि में ईश्वर की जो जाग्रत अवस्था है उसका नाम है विराट्, स्वप्नावस्था का नाम है हिरण्यगर्भ और सुषुप्ति का है प्राज्ञ । प्राज्ञ ईश्वर का अंश है । रामचरितमानस में एक चौपाई आती है —

ईश्वर अंस जीव अबिनासी । चेतन अमल सहज सुख रासी।।

जीव ईश्वर का अंश है । अंश क्यों कहा गया है ? क्योंकि ईश्वर समष्टि है और प्राज्ञ व्यष्टि है । ईश्वर और प्राज्ञ को लेकर ही यहाँ अंशी अंश कहा गया है । जो चैतन्य तीनों का साक्षी है । उसमें अंश-अंशी का भेद नहीं है । दोनों अभिन्न हैं । किसी प्रकार का भेद तीनों में नहीं है । इसी को अगर समझना है तो ध्यान करना चाहिए । ध्यान की विधि भगवती राजराजेश्वरी देवी बतलाती हैं कि जीव और ईश्वर, व्यष्टि और समष्टि । व्यष्टि को समष्टि

में मिला दो । विश्व को विराट् में मिला दो, तैजस् को हिरण्यगर्भ में मिला दो और प्राज्ञ को ईश्वर में मिला दो । तीनों मिल गए । अब तीनों का वाचक ह्रींकार है । ह्रीं में ह, र और म है । हकार जागृत अवस्था, रकार स्वप्नावस्था और मकार सुषुप्ति अवस्था है । हकार का अर्थ विराट्, रेफ का अर्थ हिरण्यगर्भ और मकार का अर्थ है ईश्वर । अब तीनों में वाच्य-वाचक का अभेद है । हकार का अर्थ विराट् समझ लो, अब हकार को रकार में लीन कर दो क्योंकि बीज से अंकुर निकलता है और अंकुर से वृक्ष होता है। ईश्वर बीज है और हिरण्यगर्भ अंकुर है । विराट् वृक्ष है । हकार को रेफ में विलीन कर दो, रेफ को मकार में विलीन कर दो और इन तीनों को ह्रींकार में लीन कर दो । ह्रींकार साक्षात् ब्रह्म है । परब्रह्म परमात्मा का रूप है ।

जैसे उपनिषदों में ॐकार है उसी तरह यहाँ देवीभागवत में ह्रींकार है । ये भी ॐकार का ही रूप है । इस तरह से सबका विलय कर दें । जाग्रत, स्वप्न, सुषुप्ति तीनों का साक्षी स्वयंप्रकाश जो आत्मा है उसमें स्थित हो जाए और स्थिरासन में शान्त बैठें । अपनी आत्मा का ध्यान करें । इस तरह फिर आगे देवताओं ने और हिमालय ने प्रार्थना की कि आप जो अपना विराट् रूप बता रहीं हैं, आप सर्वस्वरूप हैं तो अपना विराट् रूप दिखाइए। तो जगदम्बा ने अपना विराट् रूप दिखाया । सारा विश्व ही उनका रूप हो गया —

बिस्व रूप रघुबंस मणि करहु बचन बिस्वास ।

विश्वरूप से भगवती ने अपने रूप को दिखाया । सारा ब्रह्माण्ड उनका शरीर है । बड़ा भयावह रूप देखकर देवता लोग डर गए । प्रार्थना की कि हे महारानी ! आप सौम्य रूप धारण कीजिए तो उन्होंने सौम्य रूप धारण किया । पाश, अंकुश, इक्षुधनु और पुष्पबाण धारण करके जगदम्बा जब सामने आईं तो सब सन्तुष्ट हुए । भगवती ने देवताओं को तत्वमसि महावाक्य का उपदेश किया । तत् त्वम् असि । तत् माने ब्रह्म, त्वम् माने जीव और असि माने दोनों की एकता । तत्त्वमसि ।

अब देखिए कि ईश्वर और जीव में अन्तर है । ईश्वर सर्वशक्तिमान् हैं और जीव सीमित शक्तिमान् है । ईश्वर सर्वव्यापक है और जीव परिच्छिन्न है।

दोनों में अन्तर है परन्तु यह अन्तर उपाधिकृत है । उदाहरण दे दिया। कहते हैं कि यदि वाक्यार्थ में संगति नहीं होती है तो लक्षणा करना चाहिए। तीन प्रकार की लक्षणा होती है - जहत् लक्षणा, अजहत् लक्षणा और भागत्याग लक्षणा । यहाँ पर भागत्याग लक्षणा लगेगी । **सोऽयं देवदत्तः।**

एक देवदत्त नाम का व्यक्ति है जिसको हमने बारह साल पहले पटना में देखा, आज वो बनारस में दिख रहा है । वो देश, वो काल और ये देश, ये काल दोनों को अलग कर दो । व्यक्ति-व्यक्ति को ले लो । इसी तरह से जो माया उपाधि है इसको छोड़ दो और अविद्या को भी छोड़ दो। जो इन दोनों का साक्षी चेतन है उसी को ले लो —

मायाविद्ये विधायैव उपाधिं परजीवयोः ।
अखण्डं सच्चिदानन्दं परब्रह्मेव लक्ष्यते ॥

ब्रह्म की उपाधि माया और जीव की उपाधि अविद्या इन दोनों का त्याग करके दोनों के साक्षी चैतन्य परम प्रकाश को लक्षित कर लो तो जन्म-मरण का चक्र छूट जाएगा । आवागमन का चक्र छूटेगा । इसका उपदेश भगवती राजराजेश्वरी देवी ने अपने पिता हिमालय को दिया । देवताओं को दिया । बस आज इतना ही कहकर सत्संग पूर्ण करते हैं । कठिन तो हुआ होगा आप लोगों को लेकिन ये भी सुनाना जरूरी है । तत्त्व की बात जब तक न सुनाई जाए तब तक ये होगा कि केवल कथा सुना दिया । तत्त्व की बातों को रख लिया । इसलिए ये सुनाना जरूरी था ।

श्री राम जय राम जय जय राम
प्यारे जरा तो मन में विचारो क्या साथ लाए अरु ले चलोगे
जाता सदा साथ यही पुकारो गोविन्द दामोदर माधवेति
गोविन्द दामोदर माधवेति हे कृष्ण हे यादव हे सखेति
श्रीकृष्ण गोविन्द हरे मुरारे हे नाथ नारायण वासुदेव
श्रीकृष्ण गोविन्द हरे मुरारे हे नाथ नारायण वासुदेव
धर्म की जय हो । अधर्म का नाश हो ।
प्राणियों में सद्भावना हो । विश्व का कल्याण हो ।
गोमाता की जय हो । गोहत्या बन्द हो ।

हर हर महादेव ।

नवम दिवस

उपाधि के कारण ही जीव और ईश्वर में भेद दिखता है

समुपस्थित विद्वद्वृन्द ! देवियो ! सज्जनो !

श्रीमद्देवीभागवत की परम पावनी कथा में आप सुन रहे थे कि भगवती स्वयं गुरु का रूप धारण करके हिमालय को निमित्त करके सारे संसार को तत्त्वज्ञान का उपदेश कर रही हैं । आपने सुना कि परब्रह्म परमात्मा के आश्रित एक माया शक्ति है । वह माया शक्ति न भावरूपा है, न अभावरूपा है । वह न सत् है, न असत् है और न ही सदसत् है । वह न भिन्ना है, न अभिन्ना है और न ही भिन्नाभिन्ना है । वह अनिर्वचनीया है। उस अनिर्वचनीय माया के सात्त्विक अंश के दो भाग हो जाते हैं । एक भाग विशुद्ध सत्त्व होता है जिसमें रजोगुण और तमोगुण बिल्कुल न मिला हो । उस विशुद्ध सत्त्व में प्रतिबिम्बित जो शुद्ध चैतन्य है वह ईश्वर होता है । वह भगवती हैं । मलिन सत्त्वगुण जिसमें रजोगुण और तमोगुण मिला हुआ है उसको अविद्या कहते हैं । उस अविद्या में जो प्रतिबिम्बित चैतन्य है वह जीव कहलाता है । जीव और ईश्वर दोनों का जो आधार या अधिष्ठान है वह एक ही है । भेद उपाधिकृत है ।

उदाहरण के लिए आप समझ लीजिए कि आप दर्पण में अपना मुख देखते हैं । यदि दर्पण में मलिनता है तो वह मलिनता दर्पण की है, मुख की नहीं है । लेकिन दर्पण की उपाधि से मुख में मलिनता दिखाई पड़ती है। यदि दर्पण टेढ़ा हो तो मुख भी टेढ़ा ही दिखाई देगा । कोई-कोई दर्पण ऐसा होता है कि मुख छोटा हो तो भी बहुत बड़ा दिखाई पड़ता है और बड़ा हो तो छोटा दिखाई पड़ता है । मुख का छोटापन और बड़ापन दर्पण के कारण है । समझ लीजिए कि आप किसी तालाब के किनारे बैठे हैं । सरोवर के किनारे बैठे हैं। पूर्णिमा की रात्रि है । उस पूर्णिमा की रात्रि में चन्द्रमा सरोवर

में प्रतिबिम्बित हो रहा है । जब हवा चलती है तो सरोवर में तरंगें उठती हैं। पानी ऊपर नीचे होता है तो ऐसा लगता है कि चन्द्रमा भी हिल रहा है । आप बताइए कि चन्द्रमा हिल रहा है कि पानी हिल रहा है ? पानी हिलता है क्योंकि चन्द्रमा तो स्थिर है । पानी चन्द्रमा की उपाधि है । यदि पानी मैला हो तो चन्द्रमा भी मलिन दिखेगा । इसी तरह से अन्तःकरण के शुद्ध होने पर, स्वच्छ होने पर आत्मा का यथार्थ स्वरूप प्रतिबिम्बित होता है और जब अन्तःकरण में मलिनता होती है, चञ्चलता होती है वह मलिनता और चञ्चलता आत्मा में भी भ्रम से भासित होने लगती है ।

इसी तरह से आप जीव बन गए हैं । आप क्यों जीव बन गए? क्योंकि अन्तःकरण के धर्मों को आपने अपना धर्म समझ लिया । अन्तःकरण में कर्त्तृत्त्व-भोक्तृत्त्व है । उस कर्त्तृत्त्व-भोक्तृत्त्व को आपने अपना बना लिया। आप कर्म के कर्त्ता हो गए और कर्त्ता हो गए तो भोक्ता होना ही पड़ेगा । जब आप कर्म करोगे तो भोगेगा कौन ? भोगने वाले भी आप ही बनोगे । यह अनादि काल से चला आ रहा है । आप कर्त्ता-भोक्ता बन गए । क्योंकि आपने अपने स्वरूप को भुला दिया । अन्तःकरण को ही अपना स्वरूप मान लिया । अन्तकरण के कर्त्तृत्त्व-भोक्तृत्त्व को आपने अपने में आरोपित कर लिया । इनके आरोपित हो जाने का नाम ही चिज्जड़ ग्रन्थि है । जड़ और चेतन की ग्रन्थि । आप देखिए । गोस्वामी तुलसीदास जी महाराज ने कहा है—

ईश्वर अंस जीव अबिनासी । चेतन अमल सहज सुख रासी॥

जीव ईश्वर का अंश है । वह अविनाशी है । चेतन, अमल, सहज सुख की राशि है । ईश्वर कौन है ? ईश्वर है सच्चिदानन्द । सत्, चित, आनन्द । सत् माने जो तीनों कालों में एक ही तरह से रहता है, चित माने जो प्रकाशक स्वरूप हो, ज्ञानस्वरूप हो और आनन्द । सत्, चित, आनन्द तीनों को मिला देने पर बन जाता है सच्चिदानन्द । परमात्मा सच्चिदानन्दस्वरूप है —

राम सच्चिदानंद दिनेसा । नहिं तहँ मोह निसा लवलेसा ॥

गोस्वामी तुलसीदास जी कहते हैं कि यह अविनाशी है । अविनाशी का मतलब है सत् । चेतन है माने चित् और सहज सुखराशी है इसका मतलब है आनन्द ।

सुख दो तरह का होता है । एक सुख जो साधनसापेक्ष्य होता है । जैसे आपको रूप का सुख लेना है तो सुन्दर रूप होना चाहिए सामने । आँख अच्छी होना चाहिए और मन प्रसन्न होना चाहिए। तभी आप रूप का आनन्द ले सकते हो । यदि आँख में मोतियाबिन्द है, मन में कोई कष्ट है तो रूप के सामने आने पर भी उसका सुख नहीं मिल सकता । इसी तरह से रस । अच्छी से अच्छी चीज आपके सामने हो । आप भोजन का सुख लेना चाहते हैं । भोजन का सुख तब मिलेगा जब रसोई अच्छी बनकर आएगी और वह हमेशा अच्छी बनती नहीं ।

राग रसभरी पागड़ी कभी कभी बन जाए ।

जब रसोई अच्छी बन जाती है तो स्वाद मिलता है । आप सुखी हो जाते हैं और कहीं नमक ज्यादा हो गया, कम हो गया, अधपका रह जाए, रोटी जल गई तो क्या होगा ? आपका सुख चौपट हो गया । आपके सुख का आधार उत्तम भोजन था । यदि आपको कोई रोग हो गया । पेट में अजीर्ण हो और उसके कारण पित्त हो गया हो । खट्टी डकारें आ रही हों तो उस हालत में अच्छा भोजन भी आपको सुख नहीं देगा । आपकी जठराग्नि शुद्ध होनी चाहिए । एक बात और है कि जठराग्नि भी शुद्ध हो, भोजन भी अच्छा हो पर मन में कोई चिन्ता हो । किसी के मरने की खबर आ गई तो आपका सुख चौपट हो गया । आप थाली सरका दोगे कि अब नहीं खाया जाता । आप ससुराल में गए हो और थाली कोई पटक दे कि लो खाओ । प्रेम से अगर न बोले तो भी चौपट । खाने का आनन्द खत्म। इसी तरह से शब्द । आप गाना सुन रहे हैं । भजन सुन रहे हैं । हारमोनियम बज रहा है और उसी समय कोई बेसुरा बोलने लग जाए तो खटक जाता है । फिर अच्छा नहीं लगता । मन प्रसन्न न हो तो कहाँ का गाना, कहाँ का बजाना ? अब जो लोग चुनाव हार गए हैं वे लोग जब कथा सुनने बैठते हैं तो उनकी वे ही जानते हैं । तुम भी मुकदमा लड़ते हो, हार जाते हो । ग्राम पञ्चायत का चुनाव हार जाते हो । जहाँ अपने मन की बात नहीं होती है वहाँ कुछ भी अच्छा नहीं लगता । शब्द, स्पर्श, रूप, रस, गन्ध; ये जितने भी संसार के सुख हैं सब साधनसापेक्ष्य हैं लेकिन जो परमात्मा के अनुभव का सुख है उसमें कोई साधन नहीं चाहिए । सहज ही सुख है । उसका उदाहरण आप देख लीजिए कि जब आप गाढ़ी नींद में सो जाते हैं

तो उस समय न शब्द है, न स्पर्श है, न रूप है, न रस है, न गन्ध है, न आँख है, न कान है, न नाक है, न जीभ है और न त्वक् है । अन्तःकरण भी विलीन है । वहाँ भी आप सुख का अनुभव करते हैं और उठकर कहते हैं कि आज मैं इतने सुख से सोया कि कुछ पता ही नहीं रहा । ये सुख किस साधन का था ? यही सहज सुख है । इसमें साधन की अपेक्षा नहीं ।

ईश्वर अंस जीव अबिनासी । चेतन अमल सहज सुख रासी॥

जब हम भी सच्चिदानन्द हैं, भगवान् भी सच्चिदानन्द हैं । हममें और परमात्मा में जब कोई अन्तर ही नहीं है तो फिर हम क्यों दुःखी हैं ? गोस्वामी तुलसीदास जी कहते हैं —

सो मायाबस भयउ गोसाईं । बँध्यो कीर मरकट की नाईं ॥

जीव माया के वश में हो गया है । कैसे वश में हो गया ? क्या माया ने उसको पकड़ लिया ? कहा कि **बँध्यो कीर मरकट की नाईं** । कीर माने तोता और मरकट माने बन्दर । तोते को पकड़ने के लिए बहेलिये एक रस्सी में बाँस की पोंगरी लेकर जंगल में जाते हैं । रस्सी के दोनों सिरों को खूँटी से बाँधकर खूँटी को जमीन में गाड़ देते हैं । नीचे कोई खाने की चीज बिखेर देते हैं । तोते खाने के लिए आते हैं और वे पोंगरी में बैठ कर खाना पसन्द करते हैं तो बाँस की पोंगरी में अपने पंजे जमाकर जब वे खाना चाहते हैं तब पोंगरी उलट जाती है । पोंगरी उलट गई तो तोते उल्टे टंग गए। मुँह तक चारा पहुँच नहीं पाया । हम गिर न पड़ें इस डर से अपने पंजे से पोंगरी को कसकर पकड़ लेता है । इसी बीच में बहेलिया आता है और उन्हें पकड़कर झोली में बन्द कर लेता है ।

कई ऐसे लोग होते हैं जो ज्ञान की बात रट तो लेते हैं लेकिन अमल में नहीं लाते । गुरु का भी कहना सुन लेते हैं पर जीवन में नहीं उतारते ।

तोतों को इस तरह से लटके हुए देखकर एक महात्मा वहाँ गए और उन्होंने तोते को उपदेश दिया कि देखो भाई तोते ! तुमने पोंगेरी को पकड़ा है । पोंगरी ने तुमको नहीं पकड़ा है । तुम छोड़ दो ओर उड़ जाओ । तोते ने यही रट लिया कि 'देखो भाई तोते ! तुमने पोंगेरी को पकड़ा है । पोंगरी ने तुमको नहीं पकड़ा है । तुम छोड़ दो ओर उड़ जाओ ।' अब तोते की बात सुनकर महात्मा जी ने सोचा कि अब ये पाठ हमने पढ़ा दिया है । अब और कोई तोता बहेलियों की पकड़ में नहीं आएगा । लेकिन दूसरे दिन जब वे

गए तो वही तोते और उनके साथ के और भी तोते पोंगरी में लटके यही पाठ पढ़ रहे थे। 'देखो भाई तोते ! तुमने पोंगेरी को पकड़ा है । पोंगरी ने तुमको नहीं पकड़ा है । तुम छोड़ दो ओर उड़ जाओ ।' वे सब न छोड़ते हैं न उड़ते हैं।

यही माया है, जिसको हमने ही पकड़ रखा है । माया ने हमको नहीं पकड़ा है । हमलोग जब किसी से पूछते हैं कि भगवान् का भजन करते हो तो कहते हैं महाराज ! हम माया में पड़े हैं । हमसे क्या हो सकता है ? हमलोग कहते हैं कि तुम खुद ही पकड़े हो । खुद नहीं छूटना चाहते ।

दूसरी बात बन्दर को पकड़ने के लिए छोटे मुँह का घड़ा जिसे सुराही कहते हैं उसमें लड्डू भर दिया जाता है और उसे जमीन में गाड़ दिया जाता है। बन्दर पहुँचा और देखा इधर-उधर कोई नहीं है और लड्डू रखे है तो झट से अपना हाथ घड़े में डाल देता है । हाथ डालकर लड्डू को अपनी मुट्ठी में ले लिया । बँधी मुट्ठी को जब घड़े से बाहर खींचता है तो निकलती नहीं । मुट्ठी छोड़े तो निकल जाए । बार-बार झटका देता है और सोचता है कि घड़े ने हमको पकड़ लिया । इस तरह फँस जाता है और बहेलिया पकड़-पकड़ कर ले जाता है ।

तोता आशा में लटका है कि नीचे जो अनाज है उसको हम खा जायेंगे और बन्दर तृष्णा में लटका हुआ है । एक अलब्ध विषय है और दूसरा लब्ध विषय है । विषय आपको प्राप्त नहीं है इसलिए आप संसार में पड़े हैं कि मिलेगा और जिनको थोड़ा बहुत मिल गया है वे उसको छोड़ना नहीं चाहते । बात क्या है ? गोस्वामी जी ने लिखा है कि —

जड़ चेतनहि ग्रंथि परि गई । जदपि मृषा छूटत कठिनई ॥

जड़ चेतन की गाँठ पढ़ गई है । अन्तःकरण जड़ है । अन्तःकरण के साथ आप शरीर को भी मिला लेते हैं । शरीर, इन्द्रिय, मन, बुद्धि ये सब जड़ हैं । जड़ उसको कहते हैं जिसको जाना जाता है । जिसे जाना जाए वह जड़ और जो जानता है वह चेतन । जो जिसको जानता है वह उससे अलग होता है । आप जिस चीज को जानते हैं वही आप नहीं होते । आप उससे अलग होते हैं । यह नियम है कि ज्ञेय से ज्ञाता अलग होता है । शरीर, इन्द्रिय, मन, बुद्धि ये ज्ञेय हैं । इनको आप जानते हैं और कहते हैं कि मेरा शरीर, मेरी आँख, मेरी नाक, मेरा कान, मेरी जीभ । जिसको हम

मेरा कहते हैं वह मैं नहीं होता । मेरी मोटर, मेरा घर, मेरा खेत, मेरा खजाना। जिसको आप मेरा कहते हैं मैं उससे अलग होता है । आप शरीर, इन्द्रिय, मन को मेरा कहते हो । आप इससे अलग हो । जिसको आप जानते हैं वह जड़ और आत्मा हो गया वह चेतन ।

आत्मा चेतन क्यों है ? क्योंकि वह इसको प्रकाशित करता है । वह प्रकाशस्वरूप है । जड़ में चेतनता नहीं है । कुछ लोग ऐसा कहते हैं कि चेतनता जड़ का धर्म है, पर ऐसा नहीं है । धर्म और धर्मी में भेद होता है। चेतनता जड़ का धर्म नहीं हो सकता । इसीलिए यह भी आप नहीं कह सकते कि चेतन में चेतन रहता है । यदि ऐसा कहोगे तो दोनों चेतनों में अन्तर क्या है ? इसलिए कहना होगा कि जड़ और चेतन दोनों अलग-अलग हैं । बहुत से लोग कहते हैं कि महाराज ! हमको आत्मा का दर्शन करा दो । आत्मसाक्षात्कार करा दो । हम आत्मा को जानना चाहते हैं । बहुत से सम्प्रदाय खड़े हो गए हैं जो आत्मा का दर्शन कराते हैं । कैसे कराते हैं ? आप समझ लो । आपकी दोनों आँखों को दबाते हैं तो आपकी दोनों आँखों के बीच भ्रूमध्य में प्रकाश दिखाई पड़ता है । कहते हैं कि जो प्रकाश दिखाई पड़ रहा है वही ज्योति है । यही आत्मा है । जिसको दिख गई वे कहते हैं कि हमको आत्मसाक्षात्कार हो गया । लेकिन प्रश्न यह है कि कभी दिखती है और कभी नहीं भी दिखती है । जो कभी दिखे और कभी न दिखे वह प्रकाश नहीं । प्रकाश सदा एक सा रहना चाहिए ।

सदा प्रकास रूप जिमि राखी ।

जो सदा प्रकाशस्वरूप हो वह आत्मा है ।

ज्योतिषामपि तज्ज्योतिः तमसः परमुच्यते ।

वह आत्मा ज्योतियों की भी ज्योति है । जो ज्योतियों को भी जानने वाला है उस ज्योति को आप कैसे जानोगे ? बोलोगे कि हमको तो आत्मा दिख गई । जो देखने वाला है वह आत्मा है कि नहीं ? दिखने वाली चीज आत्मा नहीं, अनात्मा है । देखने वाला वह स्वयंप्रकाश है । जैसे दीपक को अपने प्रकाश के लिए किसी और के प्रकाश की जरूरत नहीं होती । जिस तरह दीपक प्रकाशस्वरूप है उसी तरह आत्मा भी प्रकाशस्वरूप है । उसको जानने के लिए किसी अन्य आत्मा की जरूरत नहीं है । आपने जो उसको

जड़ से मिला दिया है इस जड़ को आत्मा से अलग कर दो तो आत्मा का ज्ञान हो जाएगा । जड़ चेतन मिल गए यही ग्रन्थि है ।

जड़ चेतनहि ग्रंथि परि गई । जदपि मृषा छूटत कठिनई ॥

यह ग्रन्थि मृषा है माने झूठी है लेकिन छूटना कठिन है । भ्रम बड़ा कठिन होता है । भ्रम जल्दी नहीं जाता । जीव की क्या दशा है ? बैलगाड़ी चल रही है और उसके नीचे कुत्ता चल रहा है । कुत्ता समझता है कि गाड़ी हम ही चला रहे हैं । वस्तुतः वह गाड़ी नहीं चला रहा है । वह तो स्वयं चल रहा है । अपने चलने को गाड़ी चलाना समझता है । इसी तरह से आत्मा अपने आपको भूल जाने के कारण अन्तःकरण के गुण-धर्मों को अपने में आरोपित कर लेता है । दूसरे के धर्मों को अपने में आरोपित कर लेने का नाम ही ग्रन्थि है । अन्तःकरण को आत्मा से या आत्मा को अन्तःकरण से किसी ने बाँधा नहीं है । केवल वह मान बैठा है । इसी का नाम है अज्ञान। अज्ञान को यदि आप दूर करना चाहते हैं तो वह कर्म से नहीं दूर होगा । वह तो ज्ञान से दूर होगा । इसलिए सूरदास जी ने उदाहरण दिया है —

अपुनपों आपन ही बिसर्‌यो
जैसे श्वान काच मन्दिर में भ्रमि भ्रमि भूसि भर्‌यो
सूरदास नलिनी को सोटा कहु कोने पकर्‌यो
अपुनपों आपन ही बिसर्‌यो ॥

आप अपने आप को भूल गए । अपने को भूलने के कारण आपने अन्तःकरण, मन, बुद्धि को अपना आत्मा मान लिया । आत्मा मानकर आप दुःखी हो रहे हैं । बुद्धिमानी की बात यह है कि इसको अपने आप से अलग कर दो । जड़ चेतन की ग्रन्थि तब दूर होगी जब आत्मा को जड़ से आप पृथक् समझ लेंगे । इसके लिए विवेक की आवश्यकता है । आत्मा-अनात्मा का विवेक करना पड़ता है । अन्तःकरण सूक्ष्म शरीर है, हमारा शरीर स्थूल शरीर है और अज्ञान कारण शरीर है । ये तीन शरीर हैं । स्थूल शरीर की प्रधानता जाग्रत अवस्था में रहती है, सूक्ष्म शरीर की प्रधानता स्वप्नावस्था में रहती है और कारण शरीर की प्रधानता सुषुप्ति अवस्था में रहती है । लेकिन आत्मा तीनों अवस्थाओं में रहता है । जाग्रत, स्वप्न और सुषुप्ति इन तीनों को ही तुम जानते हो । हम जब आत्मा शब्द का उच्चारण कर रहे हैं इसको समझिये 'मैं' । मैं जाग्रत में संसार को देखता हूँ, स्वप्न में भी संसार को

देखता हूँ और सुषुप्ति में भी मैं ही निद्रा का अनुभव करता हूँ । लेकिन मैं तीनों अवस्थाओं में रहता हूँ । तीन अवस्था कभी रहती है और कभी नहीं रहती है । विचार के द्वारा इसे समझ लिया जाए । निर्भय विलास में लिखा है —

तीन अवस्था तीन गुण पंच कोश त्रय देह ।
निर्भय इनसे भिन्न तू घट-घट दृष्टा एह ॥

तीन अवस्था मतलब जाग्रत, स्वप्न और सुषुप्ति । तीन गुण माने सत्त्वगुण, रजोगुण और तमोगुण । पांच कोश का वर्णन आता है उपनिषदों में । स्थूल शरीर को अन्नमय कोश कहते हैं । हमारा आपका शरीर अन्नमय कोश है । माता-पिता ने अन्न खाया । दाल, भात, रोटी, सब्जी खाई । उससे रस-रक्त बना, बीज बना । माता ने खाया उसका रज बना । माता और पिता का रज-वीर्य मिला तो एक छोटा सा सरसों के दाने के बराबर का एक मांस पिण्ड बन गया । वह पिण्ड माता के उदर में भोजन का रस खाता गया। उसी से बढ़ते-बढ़ते और बड़ा हो गया । जैसे कदम्ब से शाखाएँ निकलती हैं वैसे ही उस पिण्ड से हाथ, पाँव, नाक, कान सब निकल गए। निकलकर नौ महीने में पूरा शरीर बन गया । काहे से बना ? अन्न से बना। पहले छोटा था तो माता का दूध पिया । फिर अन्नप्राशन हुआ । अन्न खाने लगा तो पहलवान हो गया । अन्नमय कोश यह स्थूल शरीर है । इसके भीतर प्राणमय कोश है । इस शरीर को चलाने वाली शक्ति प्राण है । कल हमने आपको बताया कि ये पाँच प्राण हैं । प्राण, अपान, व्यान, समान, उदान । पाँच कर्मेन्द्रियाँ और पाँच प्राण; इनको मिलाने पर प्राणमय कोश बनता है । पंच ज्ञानेन्द्रियाँ और मन; इनको मिलाने से मनोमय कोश बनता है । पंचज्ञानेन्द्रियाँ और बुद्धि को मिलाने से विज्ञानमय कोश होता है । इन सबके न रहने पर जो कुछ नहीं समझ में आ रहा है वह आनन्दमय कोश है । इन पाँचों कोशों से ऊपर जो इन पाँचों का द्रष्टा है वह ब्रह्म है । इस तरह से माता ने अपने पिता और दूसरे जो भक्त लोग हैं उनको ज्ञान का उपदेश दिया । तत्त्वमसि महावाक्य का अर्थ बतलाया । तत् पदार्थ मायाविशिष्ट चैतन्य । त्वं पदार्थ जीव । दोनों में एकता तत्त्वमसि महावाक्य के असि से आती है । इसको समझने के लिए इसमें से जो अनात्मा है वह उपाधि है । मायारूपी उपाधि को छोड़ दो । जीव की अविद्या उपाधि को

छोड़ दो । दोनों का चेतन ले लो। चेतन-चेतन एक है । यह चेतन ईश्वर में भी है और जीव में भी है। शरीर अनेक है लेकिन सब शरीरों के भीतर चेतन एक ही है ।

नदिया एक घाट बहुतेरा । कहत कबीर वचन का फेरा ॥

सबके भीतर मैं-मैं के रूप में वही चैतन्य प्रस्फुरित हो रहा है । उस चैतन्य को माया और अविद्या से अलग कर दो तो शुद्ध चैतन्य रह जाता है। यही शुद्ध चैतन्य अपना स्वरूप है । उस चैतन्य से भिन्न शरीर, इन्द्रिय, मन, बुद्धि मायाकृत हैं । माया वास्तव में कोई वस्तु है नहीं । इसलिए ये भी कोई वस्तु नहीं है । ऐसी स्थिति में अकेला मैं ही हूँ यह बात समझ में आ जाती है ।

इस तरह से आत्मा को नित्य, शुद्ध, बुद्ध, मुक्त समझना चाहिए । यह ज्ञान से हो सकता है कर्म से नहीं । कुछ लोग कहते हैं कि कर्म से ज्ञान होगा। कर्म करने के लिए पहले अपने को कर्त्ता मानोगे तभी तो कर्म करोगे। कर्ता बन गए तो कर्त्ता ही बने रहोगे । कर्म करते जाओ और भोगते जाओ। कर्त्तापन ही अज्ञान से है । इसलिए ज्ञानरूपी तलवार से इस अज्ञान को दूर करो ।

असंग शस्त्रेण दृढ़ेन छित्वा

असंग शस्त्र से इस अज्ञान को दूर करो । जो अज्ञान को दूर कराता है उसी का नाम गुरु है ।

गलियन गलियन गुरु फिरें दीक्षा हमरी लेव ।
स्वरग पड़ो चाहे नरक पड़ो हमें रुपैया देव ॥

इनसे तुम्हारा अज्ञान दूर नहीं होगा । अज्ञान तब दूर होगा जब तुम्हें कोई ज्ञान का उपदेश करेगा । ऐसे ज्ञान का उपदेश करने वाले गुरु और परमात्मा में कोई अन्तर नहीं होता । जो गुरु का भक्त होता है उसी को शास्त्र के तात्पर्य का ज्ञान होता है । श्वेताश्वतर उपनिषद् में लिखा है —

यस्य देवे पराभक्तिर्यथादेवे तथा गुरौ ।
तस्यैते कथिता ह्यर्थाः प्रकाशन्ते महात्मनः ॥

जिसकी अपने इष्ट देवता में पराभक्ति है । जैसी देवता में भक्ति है वैसी ही गुरु में है तो उसको ये बात समझ में आती है । जो गुरु के वचनों में विश्वास करता है ।

पहले हम समझें कि गुरु कौन है ? विश्वास कर लें । एक अन्धविश्वास भी होता है । लोग अपने में विश्वास करा देते हैं । लेकिन

विश्वास और अन्धविश्वास में अन्तर यह है कि जो वास्तविक विश्वास है उसे प्रामाणिक होना चाहिए । अन्धविश्वास अप्रामाणिक होता है । इस वट में यक्ष रहता है, इस घर में भूत रहता है । सुन लिया और आपने मान लिया यह अन्धविश्वास है । प्रामाणिक विश्वास उसको कहते हैं जो अनुभव से, प्रमाण से सिद्ध हो । परमात्मा को जानने का प्रमाण क्या है ? यह प्रमाण श्रुति है, वेद है और वेदानुकूल शास्त्र हैं । देवी भागवत हैं और हमारे दूसरे पुराण हैं। इनमें जो बात बताई गई है वो प्रामाणिक है । इनसे इतर जो लोग बोलते हैं और कहते हैं कि हम अपना ज्ञान बता रहे हैं । जिनके पास शास्त्र नहीं है समझ लो कि वे पाखण्डी हैं । समझ लो कि मनगढ़न्त बात कह रहे हैं । जो शास्त्रसम्मत हो वही मानना चाहिए ।

श्राव्यं सदा किं ? गुरु-वेद-वाक्यम् ।

भगवान् शङ्कराचार्य जी से जब पूछा गया कि क्या सुनना चाहिए तो उन्होंने कहा कि वेद के अनुकूल जो गुरु के वचन हैं वही सुनना चाहिए। जो वेद को जानने वाला हो वही तो वेदानुकूल बोलेगा ।

एक व्यक्ति कहीं जा रहा था । रास्ते में एक नदी पड़ी । नदी में पानी गहरा था । उसने सोचा कि हम इसको पार कैसे करें ? किनारे ही एक अन्धा बैठा था । वो बोला कि मेरे पीछे चलो मैं नदी के उस पार पहुँचा दूँगा। उसने सोचा कि यह अन्धा है । इसको क्या पता ? जाने ये कहाँ ले जाएगा ? लंगड़ा बैठा था कि हम यहीं से बता देते हैं । उसने सोचा कि ये लंगड़ा है तो इसने कभी पार किया नहीं होगा । पार नहीं किया है तो हमें कैसे बताएगा कि कहाँ-कहाँ गहरा कहाँ नहीं ? फिर एक आँखों और पैरों से युक्त आदमी आया । उसने कहा हम तुमको पार कराते हैं तब वह व्यक्ति उसके पीछे गया।

जो शास्त्र को नहीं जानता वह अन्धा और जो ब्रह्म का अनुभवी नहीं है वह लंगड़ा । शास्त्र को जानने वाला श्रोत्रिय और ब्रह्म का अनुभव करने वाला ब्रह्मनिष्ठ। ऐसे श्रोत्रिय और ब्रह्मनिष्ठ गुरु से ही ज्ञान की प्राप्ति होती है। श्रीमद्भगवद्गीता में भगवान् श्रीकृष्ण बोले —

तद्विद्धि प्रणिपातेन परिप्रश्नेन सेवया ।
उपदेक्ष्यन्ति ते ज्ञानं ज्ञानिनस्तत्त्वदर्शिनः ॥

हे अर्जुन ! तू तत्त्वदर्शी ज्ञानी के पास जा । केवल तत्त्वदर्शी नहीं कहा, ज्ञानी भी कहा । तत्त्वदर्शी का अर्थ अनुभवी और ज्ञानी का अर्थ है श्रुति को जानने वाला । प्रमाण और प्रमेय दोनों का जिसको अनुभव हो । प्रमाण श्रुति और ब्रह्म प्रमेय । दोनों का जिसको अनुभव हो वह सद्गुरु होता है यही गीता में भगवान् ने बतलाया । ऐसे सद्गुरु की शरण में जाना चाहिए।

गुरु की शरणागति कब होती है ? जब मनुष्य का चित्त कर्म और उपासना से शुद्ध हो जाता है । इसके लिए साधनों की आवश्यकता पहले पड़ती है । साधनों में एक साधन है भक्ति । भक्ति कैसे करना चाहिए ? आपने श्रीमद्भागवत में सुना होगा । वही बात यहाँ भी है —

श्रवणं कीर्तनं विष्णोः स्मरणं पादसेवनम् ।
अर्चनं वन्दनं दास्यं सख्यमात्मनिवेदनम् ॥

देवी भागवत के अनुसार भगवती राजराजेश्वरी की जो परम पवित्र कथाएँ हैं उनका श्रवण करना चाहिए । उनका वर्णन करें, आपस में चर्चा करें, स्मरण करें, चरणों की सेवा को अर्चन कहते हैं —

देवो भूत्वा देवान् यजेत् ।

देव होकर देवताओं की अर्चना की जाती है । इसलिए आवश्यक होता है कि पहले अपने आपको शुद्ध करो —

मृज्जलाभ्यां बाह्य शौचम् ।

मिट्टी और पानी से बाह्य शौच होता है । मन को शुद्ध करो । मन को शुद्ध करने के लिए जो छः शत्रु हैं । काम, क्रोध, लोभ, मोह, मद और मात्सर्य । इनको अपने हृदय से निकालो और फिर उसके बाद आप अपने आपको शुद्ध करके भगवान् की अर्चा-पूजा करो । भक्ति में होता क्या है कि एक तो भगवान् के विरह की अनुभूति होती है कि प्रभु कैसे मिलेंगे ? हमको कैसे मिलेंगे ? विरह की अग्नि से मनुष्य का प्राकृत शरीर जल जाता है । जब प्राकृत शरीर के जल जाने के बाद उसको दिव्य शरीर प्राप्त होता है तब भगवान् का साक्षात्कार होता है । इधर भगवती की पूजा के लिए पहले आचमन करें, फिर भू-शुद्धि, भूतशुद्धि करें, न्यास करें, ध्यान करें, अन्तर्याग करें, इससे अपने शरीर को दिव्य बनाकर भगवती की अर्चा करें, वन्दन करें, भगवती के साथ सख्य सम्बन्ध रखें और अन्त में आत्मनिवेदन करें । एक मार्ग योग का है । योगमार्ग समाधि के लिए किया जाता है ।

आजकल लोग योगासन कहाँ सिखाते हैं । ये कसरत है । योग नहीं है । **योगश्चित्तवृत्तिनिरोधः।** चित्त वृत्ति का निरोध ही योग है । सच पूछा जाए तो योग महावाक्यजन्य ब्रह्माकाराकारित वृत्ति है । इस वृत्ति का नाम योग है । इसके लिए आवश्यक होतां है कि शरीर को पहले शुद्ध बनाया जाए। वात, पित्त, कफ तीनों दोषों को दूर किया जाए इसके लिए यम-नियम की आवश्यकता होती है । यम-नियम जब तक नहीं है तब तक आसन से कोई लाभ नहीं है । जब आप सिगरेट पी रहे हों, शराब पी रहे हो, नशा कर रहे हों तो आपके आसन करने का कोई मतलब नहीं । आप प्राणायाम करोगे, श्वास भीतर खींचोगे तो आपके फेफड़े शुद्ध होंगे । लेकिन आपने सिगरेट पी लिया है, बीड़ी पी लिया तो आपके फेफड़े तो खराब हो जायेंगे । उस फेफड़े में जो कार्बन लगी है वो प्राणायाम से और भीतर चली जाएगी । इसलिए सबसे पहले योग सिखाने से पहले ये सिखाओ कि पहले तुम नशा छोड़ो । बहुत से लोग नशा कर रहे हैं । आजकल औरतें भी नशा करने लगी हैं । पानपराग लेने लगी हैं । प्रायः देखों तो सबके मुख में तम्बाकू है । जहर पीकर तुम अपना पेट खराब कर रहे हो, फेफड़ा खराब कर रहे हो । तुम योग क्या करोगे ? पहले नशा हटाना चाहिए और इसके साथ-साथ आहार शुद्ध होना चाहिए । भोजन शुद्ध नहीं है आजकल । आप देखिए कि चुनाव हो गए । आप सबने वोट दिए । सरकारें बन गईं । किसी ने यह कहा कि हम तुम्हारा अनाज शुद्ध करेंगे । कल ही अखबारों में निकला है कि 170 लाख लोग दूषित पानी पीने के लिए बाध्य हो रहे हैं । सारी नदियों को दूषित कर दिया है । तालाब और कुएँ दूषित हो गए हैं । पानी बिक रहा है । आप सोचो किसने कहा कि हम तुमको शुद्ध पानी पिलायेंगे । गंगा को शुद्ध करेंगे, नदियों को शुद्ध करेंगे। सबको शुद्ध पानी पहुँचायेंगे । विकास में हम आपको बढ़िया मकान दे सकते हैं, सोने के लिए बढ़िया बिस्तर दे सकते हैं, बिजली दे सकते हैं, एयरकण्डीशनर दे सकते हैं लेकिन खाना और पीने का पानी ठीक नहीं मिला और भोजन शुद्ध नहीं मिला, मिलावटी दूध मिला तो क्या होगा ? आजकल लौकी और भटा में इंजेक्शन लग रहा है । आज आप देखिये लड़कों को भोजन दिया जाता है स्कूलों में और बहुत से मर जाते हैं । जो गेहूँ और चावल आता है । वह यूरिया की देन है । उसमें कीड़े पड़ते हैं । उसको दूर करने के लिए आप

उसमें जहरीला पाउडर डालते हैं । अब उस अनाज को जब तक आप धोओगे नहीं तब तक उसमें यूरिया का पाउडर लगा रहेगा । ज्यों का त्यों उसको आपने पीस लिया और बन गई रोटी । अब खाओगे तो जहर खा लिया कि नहीं ? और पानी मिलता नहीं । शुद्ध पानी कहीं है नहीं। शहर में आप देखो कि कार्पोरेशन के नल बन्द कर दिए जाते हैं । सात-सात दिनों तक पानी नहीं आता । कहाँ गेहूँ धोएँ । न अनाज शुद्ध है, न सब्जी शुद्ध है, न दूध शुद्ध है, न पानी शुद्ध है और हम विकास कर रहे हैं । न कोई सरकार कह रही है, न कोई पार्टी कह रही है । सबसे पहले जनता को यह देखना चाहिए ।

आपको यदि योगाभ्यास करना है तो गाय के गोबर से पैदा किए हुए अनाज और सब्जी खाइए । शुद्ध दूध पीना हो तो बनावटी दूध मत पीजिए। गाय पालिए । गाय को चारा खिलाकर उसका दूध दुह कर पीजिए। आपका शरीर शुद्ध रहेगा । पुराने लोग गाय का दूध पीते थे और सैंकड़ों वर्षों तक जीते थे । आज जवान लोगों की कमर दुख गई है । हाल बेहाल हो रहा है। रेल में जाकर भोजन करते हो उसमें जितना जूठन होता है सब डाल देते हैं। दाल अगर बच गई तो उसी में डाल देते हैं । चावल बच गया तो उसी चावल में डाल देंगे । परोस देंगे । रेल में होटल में खा रहे हो । हाथ से बनाने में आलस्य आ रहा है । स्त्रियाँ सोचती हैं कि कौन मेहनत करे ? पति से कहती हैं कि चलो होटल में ही खा लें । उन्हें भोजन बनाने में दिक्कत हो रही है। और बनायें भी कब ? क्योंकि दोनों तो नौकरी कर रहे हैं । दोनों को फुरसत नहीं है । बच्चों के लिए माताएँ समय नहीं निकाल रही हैं । उनकी जवानी न चली जाए इसलिए बच्चों को दूध भी नहीं पिला रही हैं । इसलिए किसी कवि ने कहा है कि —

दूध तो डिब्बों का है तालीम है सरकार की ।
जिस्म में आए कहाँ से बू माँ बाप के प्यार की ?

ये हालत हो रही है । भारत के लोगों को इस बात को समझना है। कोई भी नेता तुम्हारे पास पैसा लेकर आए, शराब लेकर आए बिल्कुल अस्वीकार कर दो और यह पूछो कि तुम हमें अन्न शुद्ध दोगे कि नहीं ? हमारा जल शुद्ध होगा कि नहीं ? अगर ये नहीं तो हमारा आपसे कोई लेना देना नहीं । फिर अपना आचार-विचार आप शुद्ध रखें तब आसन होगा ।

आसन के बाद सुखासन, भद्रासन, पद्मासन फिर प्राणायाम । तीन नाड़ियाँ हैं— इड़ा, पिङ्गला और सुषुम्णा । बाँयी नासिका से जब श्वास चलती है तो उसे इड़ा नाड़ी कहते हैं, दाहिनी नासिका से पिङ्गला और दानों से चलती है तो सुषुम्णा । योगाभ्यास करने के लिए पूरक, कुम्भक और रेचक प्राणायाम किया जाता है । श्वांस खींचने को पूरक, रोकने को कुम्भक और छोड़ने को रेचक कहते हैं । यह मात्रा से किया जाता है । मन्त्र सहित और मन्त्र रहित। एक चार दो की मात्रा से किया जाता है । एक से खींचो चार से रोको और दो से छोड़ो । बढ़ते बढ़ते बारह से खींचो, अड़तालीस से रोको और चौबीस से छोड़ो । फिर सोलह से खींचो, चौंसठ तक रोको और बत्तीस से धीरे-धीरे छोड़ो । यह प्राणायाम कहलाता है । इसके द्वारा अपनी श्वाँस को अपने वश में करके स्थिर हो जाना इसका नाम धारणा और फिर इसके बाद भगवान् के किसी साकार सगुण स्वरूप का ध्यान । जगदम्बा का ध्यान करो । राजराजेश्वरी माता की मूर्ति को अपने ध्यान में लाओ । उनका मन्त्र जपो । ध्यान हो गया। ध्यान करते-करते ध्याता और ध्यान की विस्मृति हो जाए केवल ध्येय रह जाए । फिर ध्येय भी न रहे केवल आत्मा रह जाए तो समाधि । इस तरह से प्राणायाम करना चाहिए ।

एक और तरीका है । वह यह है कि हमारे शरीर में सात चक्र हैं। मूलाधार, स्वाधिष्ठान, मणिपूर, अनाहत, विशुद्धि, आज्ञा और सहस्रार । रीढ़ की हड्डी के सामने मूलाधार है । इसमें चार दल हैं । पीत वर्ण है और वं शं षं सं ये चार वर्ण उसमें है । मूलाधार में स्थित ज्योतिर्लिङ्ग के ऊपर एक सुषुम्णा नाड़ी है । मालाकार लटकी है और उसका मुख शिवलिङ्ग के ऊपर है । एक कुण्डलिनी शक्ति जो भगवती का रूप है वह उस शिवलिङ्ग को साढ़े तीन फेरा लपेट कर उसका मुख अपने फन से ढँककर सोई है । योगी कुण्डलिनी को जगाता है । सोती नागिन को जगाता है ।

निरंजन वन में साधु अकेला रमता है ।

किसी गुफा में निर्जन स्थान पर बैठकर साधना की जाती है । कुण्डलिनी शक्ति को जागृत करने पर जब उसका मुख ऊपर उठता है तो सुषुम्णा का मुख खुल जाता है और उसमें से जब प्राण का प्रवेश होने लगता है तब वह कुण्डलिनी शक्ति भी उसके साथ ऊपर जाती है । फिर वहाँ से वह स्वाधिष्ठान चक्र में आती है । वहाँ पर छः दल हैं । ब से लेकर ल तक

बल। फिर उसके बाद मणिपूर चक्र में आती है । वहाँ दस दल है । ठ से लेकर प तक । उसके बाद हृदय में अनाहत चक्र है । यहाँ कुण्डलिनी शक्ति सुषुम्णा मार्ग से आती है वहाँ पर क से लेकर क्ष तक । वहाँ नील वर्ण है। फिर विशुद्धि चक्र में आती है । अं से लेकर अः तक । यहाँ धूम्र वर्ण है। फिर मस्तक में आती है । हं क्षं यहाँ वर्ण हैं । ये आज्ञा चक्र है । इसमें मनस्तत्त्व है । इसके आगे सब चक्रों को पार करके कुण्डलिनी सहस्रार में जो परम शिव है उसके साथ मिलती है । कहते हैं कि कुण्डलिनी परम शिव से मिलाई जाए । यह योग की एक रीति है । मीरा एक योगिनी भी थी । वह कहती है —

हे री मैं तो प्रेम दीवानी मेरो दरद न जाणै कोय ।
गगन मण्डल पर सेज पिया की मिलणा किस विध होय ।
सूली ऊपर सेज हमारी सोवण किस विध होय ।
हे री मैं तो प्रेम दीवानी मेरो दरद न जाणै कोय ।

प्रेम की दीवानी मीरा कौन है ? यही कुण्डलिनी शक्ति है । अपने परम शिव से मिलना चाहती है । जब मिल जाती है तो वहाँ पर जो चन्द्रमण्डल है वहाँ से अमृत का स्राव होता है । उसका स्वाद लेकर योगी आनन्द का अनुभव करता है । इस तरह का अभ्यास करते-करते कुण्डलिनी जागृत हो जाती है । पहले भावना होती है और फिर वह जागृत हो जातीहै। फिर योगी अपनी इच्छा से कुण्डलिनी को ऊपर ले जाता है और फिर जब इच्छा होती है नीचे ले आता है । ऊपर जाती है तो समाधि में रहता है और नीचे आती है तो व्यवहार करता है ।

श्रोत्रिय ब्रह्मनिष्ठ सद्गुरु की शरण में जाकर बिना ज्ञान के मुक्त नहीं होगा । गुरु की भक्ति से मनुष्य को ज्ञान की प्राप्ति होगी । देवी भगवती कहती है जिसके हृदय में ब्रह्मज्ञान है वह मेरा स्वरूप है । उसकी पूजा से सबकी पूजा हो जाती है और मैं उन्हीं के पास रहती हूँ । इस तरह से जगदम्बा ने अपने भक्तों को ज्ञान का उपदेश दिया है । यह देवी भागवत परम पवित्र पुराण है । राजराजेश्वरी माता त्रिपुरसुन्दरी का यहाँ पर भुवनेश्वरी के रूप में वर्णन है । वे कामेश्वराङ्कनिलया है, मणिद्वीपनिवासिनी हैं । अगर तुमको ज्ञान नहीं हुआ लेकिन फिर भी उपासना करते रहे तो मरने के बाद मणिद्वीप में जाओगे ।

यहाँ पर बताया कि जैसे वेदों में ॐकार है वैसे ही देवी भागवत में ह्रींकार है । ह्रीं मन्त्र शक्ति का प्रणव है । इस मन्त्र का अभ्यास करते हुए मणिद्वीप में जाकर भगवती के धाम में निवास करता है । उन्हीं की कृपा से ज्ञान प्राप्त कर मुक्त हो जाता है ।

आज इतना ही कहकर हरिकथा सम्पन्न करते है । हरि अनन्त हरि कथा अनन्ता । देवी की महिमा अपार है । उनका पार कौन पा सकता है? संक्षेप में हमलोगों ने सुना, सुनाया । शास्त्री जी ने परिश्रम किया । पूरा पारायण किया । यहाँ विद्वान् बैठे हैं । पण्डित लोग बैठे हैं सबने पाठ किया। पाठ से इस क्षेत्र को और अपने-अपने हृदय को शुद्ध कर लिया और जिसका धन इनकी दक्षिणा में लगेगा उनका धन शुद्ध हो जाएगा । धन किस काम का? धर्म में न लगा तो किसके साथ जाएगा ? सब कुछ यहीं रह जाएगा । इसलिए अपना धन भगवान् के भक्त को, ब्राह्मण को अर्पण करना चाहिए। दीन-दुःखियों को दान देना चाहिए । आद्य शङ्कराचार्य जी ने अपने चर्पटपञ्जरिका स्तोत्र में लिखा है —

गेयं गीतानामसहस्त्रं ध्येयं श्रीपतिरूपमजस्त्रम् ।
नेयं सज्जनसङ्गे चित्तं देयं दीनजनाय च वित्तम् ॥

गरीबों को, दीन-दुःखियों को, ब्राह्मणों को दक्षिणा दीजिए । उनको भी सुखी बनाइए और अपने भी सुखी रहिए । जो दूसरों के सुख में सुखी होता है उसी से भगवान् का प्रेम होता है ।

श्री राम जय राम जय जय राम
प्यारे जरा तो मन में विचारो क्या साथ लाए अरु ले चलोगे
जाता सदा साथ यही पुकारो गोविन्द दामोदर माधवेति
गोविन्द दामोदर माधवेति हे कृष्ण हे यादव हे सखेति
श्रीकृष्ण गोविन्द हरे मुरारे हे नाथ नारायण वासुदेव
श्रीकृष्ण गोविन्द हरे मुरारे हे नाथ नारायण वासुदेव
धर्म की जय हो । अधर्म का नाश हो ।
प्राणियों में सद्भावना हो । विश्व का कल्याण हो ।
गोमाता की जय हो । गोहत्या बन्द हो ।
हर हर महादेव ।